प्रकाशक—
विश्वनाथ सिंह शर्मा
४२/१, हजरा रोड,
कलकत्ता

प्रमुख विक्रेता—
बम्बई बुक डिपो
१६५/१, हरिसन रोड,
कलकत्ता

मुद्रक—
उमादत्त शर्मा
रत्नाकर प्रेस
११-ए, सैयदसाली लेन,
कलकत्ता

दो शब्द

सवा सौ पृष्ठकी इस पुस्तक द्वारा श्री नरसिंहदास अग्रवालने हमारी मातृभूमिकी जो झलक दिखलायी है, वह संक्षिप्त होने पर भी विशद और संयत होने पर भी उत्साहप्रद है। उन्होंने एक सिद्धहस्त लेखककी भांति विषयोंका सूक्ष्म विश्लेषण किया है और ईमानदारीके साथ अपने परिणामों पर पहुँचे हैं, यह दूसरी बात है कि पाठक उनके निष्कर्षोंसे कहीं-कहीं असहमत हों।

भारतकी वर्तमान समस्याओंको उन्होंने चार भागोंमें विभक्त किया है :—शिक्षा समस्या, औद्योगिक समस्या, खाद्य समस्या तथा राष्ट्रीय समस्या। शिक्षा समस्याके प्रसंगमें उन्होंने एक बड़े मार्केकी बात लिखी है :—

"यहाँके निवासी प्रकृतिके प्रत्यक्ष आलिङ्गनसे सदा आनन्द उठाते आये हैं। इस कारण हमारी शिक्षा योजनामें प्रकृतिके साथ विशेष सम्पर्क रहना आवश्यक है।"

उद्योग-धन्धोंके विषयमें लेखकका यह सुझाव है कि सरकारको सबसे पहले मेशीनोंका निर्माण करना चाहिये। उनकी सम्मतिमें सरकारकी औद्योगिक नीति दोषपूर्ण है।

आजके संकट कालमें प्रत्येक वर्गके समझदार व्यक्तिका कर्त्तव्य है कि वह अपनी सम्मति निर्भीकतापूर्वक प्रकट करे। कोई उससे सहमत हो

या न हो, इसकी चिन्ता उसे छोड़ देनी चाहिये। उदाहरणके लिये इस पुस्तकमें हमें कई स्थल ऐसे जँचे जो व्यावहारिक दृष्टिसे अमान्य हैं। जहाँ लेखकने भिन्न-भिन्न विभागोंके लिये पृथक्-पृथक् निर्वाचनकी बात सुझाई है, वहाँ दो परामर्श दिये हैं, एक तो यह कि सरकार निष्पक्ष रूपसे प्रतिनिधियोंकी योग्यताकी जानकारी मतदाताओंको करा दे और दूसरा यह कि किसी भी उम्मीदवारको व्यक्तिगत तौर पर किसी प्रकारका प्रचार करनेका अधिकार न हो। ये दोनों प्रस्ताव खतरनाक हैं। क्योंकि पहला तो सरकारके हाथमें अनियंत्रित शक्ति प्रदान करता है और दूसरा स्वाधीनताके मूल सिद्धान्तका ही विरोधी है। इस प्रकार जहाँ लेखकने अरबीको उर्दूकी जननी कहा है, वहाँ भी जबरदस्त भूल की है।

पर बावजूद इन त्रूटियोंके यह पुस्तक उपयोगी बन पड़ी है। पाठकोंको इससे विचारके लिये सामग्री मिलेगी।

सबसे अधिक आशाप्रद हमें यह बात प्रतीत होती है कि लेखक जैसे साधन सम्पन्न व्यक्तिका ध्यान साहित्य क्षेत्रकी ओर गया है। निस्सन्देह इससे हिन्दीका बहुत बड़ा हित हो सकता है। उनके द्वारा किया गया यह श्रीगणेश बहुत शुभ और आशाप्रद है। वस्तुतः उन्होंने गागरमें सागर भरनेका प्रयत्न किया है और इसमें उन्हें सफलता मिली है। हम उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

१२३, नार्थ एवन्यू
नई दिल्ली

बनारसीदास चतुर्वेदी

राष्ट्रकवि मैथिली शरणजी गुप्त के उद्गार

श्री नरसिंहदास अग्रवाल की "भारत की एक झलक" नाम की पुस्तक उपयोगी जान पड़ती है। उसमें हमें अपने देश की रूपरेखा दिखलायी देती है। मतभेद तो हुआ ही करते हैं। परन्तु लेखक का श्रम प्रशंसनीय है। आशा है कि उनकी साहित्य साधना का क्रम आगे भी चलता रहेगा।

—मैथिली शरण
२७-१-२०१०

प्रकाशककी ओरसे

जिन गिने-गिनाये वहुधन्धी लोगोंका ध्यान साहित्य सेवाकी ओर गया है, उनमें वर्तमान पुस्तकके लेखक श्री नरसिंहदासजी अग्रवालका सदा एक विशिष्ट स्थान रहेगा। देशके प्रमुख उद्योग-पतियोंमें अपना स्थान रखते हुए भी माता सरस्वतीके साधकोंकी श्रेणोमें सम्मिलित होकर आपने अपने वर्गके सामने एक नवीन आदर्श रखा है। प्रकाशककी हैसियतसे इस पुस्तकके सम्बन्धमें हमारा कुछ विशेष कहना शोभा नहीं दे सकता है। प्रारम्भिक पृष्ठोंमें प्रकाशित साहित्य तथा राष्ट्रीय जगतके कई प्रमुख महारथियों की सम्मतियोंके द्वारा इस दिशामें यथेष्ट उत्साहपूर्ण संकेत मिलता है।

परिचयके रूपमें हम इतना ही कहना चाहते हैं कि वर्तमान पुस्तक प्रस्तावना खण्ड मात्र है। इस खण्डमें भारतीय संस्कृतिकी पृष्ठ भूमि अंकित करते हुए लेखकने वर्तमान समस्याओंका परिचय मात्र दिया है। आगेके खण्डोंमें भिन्न-भिन्न समस्याओं पर पृथक्-पृथक् प्रकाश डाला जायगा। आशा है कि विचारवान पाठक इस पुस्तकको अपनाकर लेखकके श्रमको पुरस्कृत करेंगे।

—प्रकाशक

केन्द्रीय सरकारके पार्लियामेण्ट विभागके मन्त्री

माननीय श्री सत्यनारायण सिंहजीकी सम्मतिः—

"भारतकी झलक" सामयिक पुस्तक है। इसके लेखक श्री नरसिंह-दास अग्रवालने विद्वत्तापूर्ण ढंगसे देशकी भिन्न-भिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला है। जहाँ-तहाँ मतभेदके लिए गुँजाइश रहते हुए भी लेखकका प्रयत्न प्रशंसनीय कहा जायगा। पुस्तककी भाषा सरल और मँजी हुई है। राजनीतिसे दिलचस्पी रखनेवाले लोगोंके मननकी इसमें यथेष्ट सामग्री है।

—सत्यनारायण सिंह

१५-५-५३

केन्द्रीय सरकारके यातायात विभागके मन्त्री

माननीय श्री जगजीवनरामजी

लिखते हैं :—

"भारतकी एक झलक" की अग्रिम प्रति पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। लेखकने आदि कालसे लेकर वर्तमान समय तककी भारतीय संस्कृतिका विवेचन मौलिक ढंगसे किया है। देशकी वर्तमान समस्याओं के सम्बन्धमें लेखकके सुझाव विचारनीय हैं। पुस्तक पढ़ने पर लेखकके स्वतन्त्र चिन्तनका पता लगता है।

—जगजीवनराम

१५-५-५३

राज्य-परिषद्के सदस्य

माननीय श्री महेश्वरप्रसाद नारायण सिंहजी

लिखते हैं :—

श्री नरसिंहदासजी अग्रवाल द्वारा लिखित "भारतकी एक झलक" पढ़नेका अभी-अभी मुझे अवसर मिला। आदिसे अन्त तक पढ़ गया। ....अपने प्रयत्नमें वे सफलीभूत हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। शैली सुन्दर और रुचिकर है। भाषामें जान और माधुर्य्य है।

मैं लेखकसे भविष्यमें इस तरहकी अन्य कृतियोंकी उम्मीद करता हूँ।

श्री नरसिंह दास अग्रवाल

भारतकी एक झलक

विषय-प्रवेश

युग बदल गया। ब्रिटिश राजत्वकी स्मृति मात्र आज वर्तमान है। भारतमें युरोपियनोंका विस्तार कुछ अंशोंमें नाटकीय ढंगसे हुआ और उनकी विदाईका रूप तो स्पष्टतया नाटकीय ही है। युरोपवाले इस देशमें व्यवसाय करने आये, पर यहांके निवासियोंके सच्चे आचार-विचारने उनके हृदयमें नाना प्रकारके लोभकी सृष्टि कर दी। भारतीय भावनाका दुरूपयोग कर वे अपनेको लाभान्वित करने लगे। छल-प्रपंचपूर्ण नीतिमें तो वे पूर्ण निपुण थे ही।

संयोगवश उनका आगमन भी राजनीतिक परिवर्तनके युगमें ही हुआ था। उन दिनों मुस्लिम साम्राज्यकी चिता पर भारतमें दर्जनों छोटे-बड़े राज्य स्थापित हो चुके थे। युरोपसे आये हुए सुसंगठित व्यापारियोंने नाना प्रकारके प्रलोभनोंके सहारे एक राजाको दूसरेसे लड़ा कर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेका क्रम

आरम्भ किया। संयोगवश अथवा भाग्यवश इनकी कूटनीति सफल होती गयी। अठारहवीं सदीके अन्तिम तथा उन्नीसवीं सदीके आरम्भिक भागमें भारतमें अंग्रेजी शासनकी जड़ मजबूत हो गयी।

भारतीय शासक अंग्रेजोंकी कूटनीति समझ न सके। भारतीय संस्कृतिकी पृष्ठभूमिमें इसे समझना कोई सरल काम न था। भारतीय भावनाके अनुसार यहांके शासकोंने छल-प्रपंचकी नीतिको सदा हीन दृष्टिसे देखा है। आज भी हमारे यहां यही भावना वर्तमान है। यह स्वाभाविक नियम है कि मनुष्य अपने हृदयकी तरह दूसरोंका हृदय भी समझता है। अतएव यहांके शासकगण अंग्रेजोंके प्रपंचपूर्ण जालको शंकाकी दृष्टिसे न देख सके।

धीरे-धीरे स्वतंत्र राजाओंका अस्तित्व समाप्त हो जाने पर अंग्रेजोंको अपने भारतीय साम्राज्यको स्थायित्व प्रदान करनेकी चिन्ता हुई। वे इस बातको समझ रहे थे कि भारतमें अंग्रेजी शासन उतने दिनों तक ही जीवित रह सकता है, जब तक हिन्दू और मुसलमानके बीच फूट डालकर वे पंचकी हैसियतसे अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकेंगे। साथ ही फूट डालनेकी क्रिया-नीतिमें वे पारंगत थे। राजाओंके बदले अब वे साम्प्रदायिक आधार पर जनतामें फूटका बीज बोने लगे।

यह क्रम १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोहसे ही आरम्भ हुआ। भारतीय स्वतंत्रता संग्रामके उस प्रथम युद्धके पश्चात् अंग्रेजोंने भारतीय सेनाका साम्प्रदायिक आधार पर संगठन किया।

फलस्वरूप राजपूत, पठान तथा मरहटा आदि रेजिमेन्टोंकी उत्पत्ति हुई।

१८८६ ई० में भारतीय कांग्रेसकी सृष्टिके बाद जब देशमें राष्ट्रीयताकी भावना बढ़ी, तो इसका सामना करनेके लिये कांग्रेस की स्थापनाके तीन साल बाद ही अंग्रेजोंके संरक्षणमें मुस्लिम लीग की स्थापना हुई।

लेकिन अंग्रेजोंकी कूटनीतिका एक प्रबल झोंका १९०५ ई० में आया। तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जनने बंग-भंगकी घोषणा की। इस योजनाके अनुसार बंगालके मुस्लिम बहुमतका भाग पूर्व बंगालके नामसे एक पृथक् प्रान्त घोषित कर दिया गया। भारतीय कांग्रेसने इस विभाजनका पूर्ण विरोध किया। प्रगति-शील बंगालने चुनौती स्वीकार करनेमें देर न की। देश और विशेषकर बंगालमें एक राजनीतिक भूकम्प आया। उससे अंग्रेजी राज्यकी मजबूत दीवार हिल गयी। भारतीय शासनके लंडन-स्थित सूत्रधारोंको एक बार फिर इस प्रश्नपर गम्भीरतापूर्वक विचार करना पड़ा। देशव्यापी राजनीतिक तूफानने अंग्रेजोंका सिर झुका दिया। संगीन और सिर्फ संगीनके बलपर वे अपने मस्तक की ऊँचाई स्थिर न रख सके। दोनों बंगालोंको मिलाकर फिर एक प्रान्त बना दिया गया।

इस राजनीतिक तथा कूटनीतिक पराजयने अंग्रेजोंके हृदयमें गहरा घाव पैदा कर दिया और वे सम्भवतः बदला लेनेका मार्ग ढूंढ़ने लगे। देशव्यापी राजनीतिक आन्दोलनने उनकी

आँखें खोल दी थीं। एक ओर निराशाके साथ उन्होंने देखा कि भारतके युवक देशके लिये बड़ेसे बड़े वलिदानको भी छोटा समझते हैं, तो दूसरी ओर उन्हें आशाके भी बादल दृष्टिगत हुए। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक देखा कि बंग-भंगके आन्दोलनमें पूर्व बंगालके मुसलमानोंने राष्ट्रीय भावनाका साथ नहीं दिया। अवश्य ही वे अंग्रेजोंके भी साथ न थे। एक प्रकारसे इस मामलेमें उन्होंने अपनेको तटस्थ रखा। उनकी इस तटस्थताने अंग्रेजोंको फूटकी मात्रा बढ़ानेके लिये उत्साहित किया।

समय बीतता गया। प्रथम महायुद्धके बाद अंग्रेजोंने भारतीयोंकी आशाओं पर पानी फेर दिया। युद्धमें भारत अंग्रेजोंका साथ देकर, प्रतिफलके रूपमें स्वराज्य प्राप्तिका स्वप्न देखने लगा था। परन्तु इस अवसर पर ब्रिटेनसे जो अधिकार मिले, उनका कोई वास्तविक महत्व न था। इस अनुदार नीतिसे असन्तुष्ट होकर देशने महात्मा गांधीके नेतृत्वमें असहयोग तथा सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया।

अंग्रेजोंकी अस्त्र-शक्तिका सामना भारत अहिंसाकी शक्तिसे करने लगा। भारतीय सत्याग्रहके रूपमें एक नवीन संग्राम-प्रणाली संसारके सामने आई।

युद्धका यह साधारण नियम होता है कि दोनों विरोधी दल एक दूसरेके प्रति अपने दाव-पेच काममें लाते हैं, लेकिन भारतीय संग्रामने इसमें एक विशेषता उत्पन्न कर दी। जनताने अपनी शक्ति केन्द्रित कर उसका पूर्ण उपयोग प्रहार करनेके बदले प्रहार

सहनेमें किया। अहिंसाके सैनिकोंको दाव-पेंचकी आवश्यकता न थी। सत्य, धैर्य्य तथा सहनशीलता उनके प्रधान अस्त्र थे। कष्ट-सहन-शक्तिके द्वारा अंग्रेजोंके प्रहार तथा दाव-पेंचका भयंकर और लज्जाजनक दृश्य वे संसारके सामने रख सके।

शत्रुपर प्रहार करनेके बदले चुपचाप उसका प्रहार सहना किसी तरह पराजय नहीं कहा जा सकता। पराजय तो आत्मसमर्पणको कहते हैं। जब किसी व्यक्ति अथवा दलकी चेष्टा विफल हो जाती है, तो वह हार स्वीकार कर लेता है। लेकिन कोई दल यदि केवल प्रहार सहनेके लिये अपनेको तैयार कर ले, तो उस समय तक उसकी चेष्टा विफल नहीं समझी जा सकती, जब तक उसमें प्रहार सहनेकी शक्ति हो।

राष्ट्र-पिता गांधीके नेतृत्वमें भारतीय सैनिक पूर्ण निर्भीकताके साथ प्रहार सहते रहे। अंग्रेजोंको यहां शासन करना था। शासन मनुष्यों पर ही किया जा सकता है, ईंट और पत्थर पर नहीं। लेकिन शासक यदि अस्त्रोंके द्वारा जनताका अस्तित्व ही समाप्त कर दे, तो फिर वह शासन किस पर करेगा? साथ ही दमनके द्वारा शरीर पर आधिपत्य जमाया जा सकता है, आत्मा पर नहीं। आत्मा पर अधिकार करनेका एक ही मार्ग है और वह है प्रेम। आत्मा पर अधिकार जमानेके वाद शरीर स्वतः अधिकार में आ जाता है, लेकिन किसीके शरीर पर अधिकार कर कोई अपनेको उसकी आत्माका अधिकारी समझनेका दावा नहीं कर सकता।

इन बातोंको समझकर अंग्रेज भारतकी नवीन युद्ध-प्रणालीसे घबड़ाये। लेकिन उन्हें अपनी कूटनीति पर भरोसा था। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानोंके बीच फूट डालनेका क्रम जारी रखा।

इतनेमें द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ और पाँच वर्षोंका रक्त-रञ्जित इतिहास लिखकर विदा भी हुआ। इस युद्धके बाद ब्रिटेन अपनी कमजोरी समझने लगा। अब उसकी गणना संसारके भाग्य-निर्णायक राष्ट्रोंमें न हो रही थी। वह समझ चुका था कि वर्त्तमान परिस्थितिके अनुसार उसे विश्वव्यापी साम्राज्यके रूपमें फैले हुए विश्वव्यापी उत्तरदायित्वसे हाथ धोना पड़ेगा। फलस्वरूप ब्रिटेनने भारत सम्बन्धी उत्तरदायित्वसे तुरन्त मुक्ति पानेका फैसला किया। जिस नाटकीय शीघ्रतासे भारतको स्वतन्त्रता दी गयी, उससे यह स्पष्ट है कि अंग्रेज जल्दसे जल्द भारतीय उत्तर-दायित्वसे हाथ धोनेके लिये तुल गये थे।

अंग्रेजोंका यह फैसला उनके लाभकी दृष्टिसे सर्वथा दूरदर्शिता-पूर्ण था। फ्रान्सकी वर्त्तमान कठिनाइयोंको देखते हुए अंग्रेजोंकी दूरदर्शिताका स्पष्ट अन्दाजा लग जाता है। आज वीतनामके विद्रोहको दबानेमें फ्रान्सकी न केवल अपनी ही शक्ति खर्च हो रही है, बल्कि अमेरिकासे प्राप्त सहायताका भी अधिकांश भाग वह इस साम्राज्य यज्ञमें स्वाहा कर रहा है। फ्रांसने झूठी इज्जतकी भारी गठरी लादे रहनेका फैसला किया, लेकिन चालाक ब्रिटेनने इस गठरीको दूर फेंककर अपना बोझा हल्का कर लिया।

ब्रिटेनने भारतसे कूचका विगुल बजाया, परन्तु जिस आकर्षक

रूपमें संसारके सामने उसने इस चित्रको रखा, उससे मालूम पड़ता था कि सहृदयताके आवेशमें आकर उसने भारतको मुक्त कर दिया है। एक ओर तो ब्रिटेन संसारके सामने महानतापूर्ण चित्र रखनेकी चेष्टा कर रहा था और दूसरी ओर विषपूर्ण कूटनीतिके जहरीले तीर भारतकी छातीमें घुसा रहा था। फलस्वरूप बीसवीं सदीके मध्यमें भारतका विभाजन हुआ, जब कि संसारमें दिनोंदिन विश्व-सरकारकी भावना प्रबल होती जा रही है।

राष्ट्रीय भारतने इस विभाजनका पूर्ण विरोध किया। २२ सितम्बर १९४० ई० को महात्मा गांधीने कहा था—"Vivesect me before you vivesect India" (भारतको टुकड़े-टुकड़े करनेके पहले मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दो।) लेकिन हठवादिता और भेदनीतिके सामने राष्ट्रपिताकी दाल न गली। अंग्रेज चलते समय भी अपनी भेदनीतिको काममें लाने पर तुले हुए थे। इसमें उनका प्रवल स्वार्थ था। परिस्थितिकी जटिलता तथा मजबूरियोंके कारण वे भारत छोड़ रहे थे। लेकिन अपने वहुमूल्य रत्नको खोनेकी भावनासे उनका बौखलाना स्वाभाविक था।

भारतके प्रचुर साधनोंका उन्हें ज्ञान था। वे जानते थे कि यदि भारतको शान्तिपूर्वक प्रगतिका अवसर मिल गया, तो उसे तुरत एक प्रबल दैत्यकी शक्ति प्राप्त हो जायगी। प्रगतिशील भारतसे उन्हें व्यावसायिक प्रतियोगिताका भी खतरा था। इस कारण भारतके विभाजनके द्वारा अंग्रेजोंने हमारे बीच जटिल समस्याओंकी सृष्टि कर हमारी प्रगतिका कांटा चौथाई सदीके लिये

पीछे कर दिया। कम-से-कम इतने दिनोंके लिये तो ब्रिटेनको इस उपमहादेशमें व्यावसायिक प्रधानता जमाये रहनेका अवसर मिल ही गया। इस तरह विभाजनके द्वारा अंग्रेजोंने भारतकी राष्ट्रीय भावनासे प्रतिशोध लेनेके साथ-साथ व्यावसायिक प्रधानताकी जड़ मजबूत कर ली।

(२)

हम स्वतन्त्रता चाहते थे, हमें मिल गयी। लेकिन पाँच वर्षोंके बाद आज भी उसका कोई प्रत्यक्ष फल दिखलायी नहीं दे रहा है। और, क्यों? इस प्रश्नका उत्तर ढूंढ़नेके लिये हमें स्वतंत्रताके वास्तविक अर्थकी गहराई तक पहुँचना होगा।

स्वतन्त्रताका साधारण अर्थ है, किसीके अधीन न रहना। लेकिन व्यावहारिक दृष्टिकोणसे विचार करने पर इस अर्थकी अव्यावहारिकता स्पष्टतः दिखलायी देने लगती है। कोई भी व्यक्ति या देश अपनेको हर प्रकारसे स्वतन्त्र नहीं रख सकता। किसी-न-किसी मामलेमें उसे दूसरों पर भरोसा करना ही पड़ता है। शक्तिशाली-से-शक्तिशाली व्यक्ति या देश भी अपनेको इस नियमका अपवाद नहीं बना पाते। इसीका नाम तो परतन्त्रता है।

फिर स्वतन्त्रता किसे कहा जाय? स्वतन्त्रता प्राप्तिके लक्ष्यसे हमारा क्या उद्देश्य था? हमारे जानते स्वतन्त्रताका तो एक ही अर्थ हो सकता है और वह है अपनी इच्छाके अनुकूल अपनी

समस्याओंको हल करनेका अधिकार। इस अधिकारकी प्राप्तिके लिये ही हम अंग्रेजोंको यहांसे भगाना चाहते थे।

परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्तिका हमारा वास्तविक उद्देश्य पूरा न हो सका। अंग्रेजी शासनके दिनोंमें देशके सामने जो समस्यायें थीं, हम अपने ढंगसे उनका समाधान करना चाहते थे। परन्तु यहांसे चलनेके पहले अङ्गरेजोंने हमारे ऊपर समस्याओंका जो पहाड़ लाद दिया, उसका बोझ सम्हालनेके लिये हम पहलेसे तैयार न थे। इस बोझको हल्का करनेके लिये हमें कम-से-कम चौथाई सदी तक संघर्ष करना पड़ेगा।

नाटकीय शीघ्रताके साथ अंग्रेजोंने यहांसे प्रस्थान किया। १९४७ ई० में देशके राजनीतिक रंगमंच पर नाटककी तरह एकके बाद दूसरा दृश्य आता रहा। इस विराट देशके टुकड़े-टुकड़े करनेका काम अंग्रेजोंने चुटकी बजाते-बजाते पूरा किया। एक मामूली जमीन्दारीका विभाजन करनेमें वे ही अंग्रेज वर्षों लगा देते थे। लेकिन समूचे देशके विभाजनका काम केवल चन्द सप्ताहोंमें पूरा कर दिया गया। आखिर, ऐसी जल्दीबाजी क्यों?

यदि डाक्टर कोई बड़ा आपरेशन करता है, तो रोगीको नस्तरकी प्रतिक्रिया सहने लायक बनानेमें कभी-कभी उसे सप्ताहों तक परिश्रम करना पड़ता है। नाना प्रकारकी दवाइयोंका उपयोग कर वह रोगीके शरीरको नस्तरका धक्का सहने लायक बनाता है। खास-खास अवस्थामें तो डाक्टरको अनुकूल मौसमकी भी प्रतिक्षा करनी पड़ती है। लेकिन इस देशको विभाजनकी प्रतिक्रिया सहने लायक

बनानेका कोई प्रयत्न नहीं किया गया और न अनुकूल समयकी ही प्रतीक्षा की गयी। जादूकी लकड़ी घुमाकर देशके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। फिर प्रश्न उठता है कि ऐसी जल्दबाजी क्यों ?

इस सम्बन्ध में अंग्रेजोंकी ओर से कहा जाता है कि साम्प्रदायिक दंगोंके फलस्वरूप देशमें खूनकी नदी बह रही थी। विभाजनके अतिरिक्त इस रक्त-प्रवाहको रोकनेका कोई दूसरा मार्ग न था। परन्तु यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि अंग्रेजी शासनके अन्तिम तीस वर्षोंमें साम्प्रदायिक दंगोंकी अधिकता रही है। कहीं-कहीं तो दंगोंका अति भीषण रूप दिखलायी दिया है। लेकिन सरकार इन दंगोंको तुरत दबाकर शान्ति स्थापित कर देती थी। फिर १९४६-४७ ई० के दंगोंको क्यों नहीं दबाया गया ? क्या अंग्रेजोंके पास दंगोंको दबाने लायक यथेष्ट अस्त्र-बल न था ? था और अवश्य था। लेकिन अपनी प्रकृति और स्वार्थके वशीभूत होकर उन्होंने उसका उपयोग न किया।

इस सम्बन्धमें यह ध्यान देनेकी बात है कि वायसराय लार्ड वावेल विभाजनके विरोधी थे। उन्होंने एक वक्तव्यमें कहा था कि भारतकी भौगोलिक एकताकी रक्षा करनी होगी। लेकिन ब्रिटिश मंत्रिमंडल भारतका तुरत विभाजन कर इस झमेलेसे छुट्टी पाना चाहता था। उन दिनों तो भीषण दंगोंके कारण विभाजनका बहाना भी था, लेकिन विलम्ब होने पर यह बहाना समाप्त हो जानेका खतरा था। यह सर्वथा सम्भव था कि कुछ दिनोंके बाद

साम्प्रदायिक भावनाके लोगोंकी आँखें खुल जातीं और वे विभाजनकी मांग वापस ले लेते ।

गर्म लोहे पर ही हथौड़ा मारा जाता है। इस कारण अंग्रेज साम्प्रदायिक ज्वालामुखीकी गर्मी शान्त होनेके पहले ही देशका विभाजन करने पर तुल गये। लार्ड बावेल अपनी अवधि समाप्त होनेके पहले ही १९४७ ई० की फरवरीमें भारतसे वापस बुला लिये गये और लार्ड माउण्टबेटन वायसरायकी गद्दी पर बैठे।

२० फरवरी १९४७ ई० को ब्रिटेनके प्रधान मंत्रीने घोषणा की कि १९४८ ई० के जून तक भारत स्वतंत्र कर दिया जायगा। लेकिन बादमें संभवतः १७ महीनेकी यह अवधि लम्बी समझी गयी। इस कारण ३ जून १९४७ ई० को लार्ड माउण्ट वेटेनने अपनी योजना घोषित कर दी। इस योजनाको लेकर ही वे सम्भवतः विलायतसे आये थे। इसके अनुसार विभाजनके आधारपर भारतीय स्वतंत्रताकी मृत-रेखा निर्धारित कर दी गई। एक प्रकारसे देशको चुनौती देते हुए कहा गया कि विभाजनके आधार पर या तो १५ अगस्त १९४७ ई० को स्वतंत्रता ले लो या इसकी चर्चा अभी बन्द करो। इस घोपणाके अनुसार सिर्फ १० सप्ताहोंके भीतर विभाजनका काम पूरा करना था और वैसा ही किया गया।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधीके नेतृत्वमें भारतकी राष्ट्रीय भावना विभाजनको रोकनेके लिये दृढ़-संकल्प थी। लेकिन जब विभाजन और परतंत्रतामेंसे एकको चुननेका प्रश्न सामने आया, तो देशकी

आत्मा कांप उठी। एक ओर शैतान और दूसरी ओर समुद्र के बीच गांधीने अपनेको पाया।

भारतीय कांग्रेसने सोचा कि विभाजनसे जो हानि होगी, उससे भी कहीं अधिक हानि होगी परतंत्रतासे। इस कारण राष्ट्रीय भारतने स्वीकृति दे दी। गांधीने कलेजे पर पत्थर रखकर विभाजन मंजूर कर लिया।

भारत स्वतंत्र हुआ। पाकिस्तानकी सृष्टि हुई। लेकिन भीषण मारकाटके कारण देशकी अवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। व्यापारी समुदायमें खलबली मच गई। शेयर बाजार इतना गिरा कि व्यापारियोंके सामने अन्धकार-सा छा गया। व्यापार में आगे बढ़नेका साहस लोगोंमें न रहा। गत द्वितीय महायुद्धके बाद देशमें पूँजीकी वृद्धि हुई थी और व्यवसायी औद्योगिक क्षेत्र की ओर अग्रसर हो रहे थे। लेकिन देशकी अनिश्चित परिस्थिति के कारण प्रगति का प्रवाह रुक-सा गया।

इधर पाकिस्तानमें इस्लाम और इस्लामकी धूम मची। शरियतके अनुसार पाकिस्तानका शासन होनेकी बात चारों ओर फैल गयी। वहांके हिन्दुओंका हृदय दहल उठा। आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक मामलोंमें उनका भविष्य अन्धकारमय दिखलायी देने लगा। फलस्वरूप वहांके हिन्दू लाखोंकी संख्या में भारत आ गये।

भारतके निवासियोंने अपनी संस्कृतिके प्रधान स्तम्भ आतिथ्य-सत्कारका पूर्ण परिचय दिया। जनता और सरकारकी सम्मिलित

शक्ति उनके कष्टोंको कम करनेकी चेष्टामें लग गयी। परन्तु यह कोई आसान काम नहीं है। पाकिस्तानसे आये हुए लगभग एक करोड़ आदमियोंके लिये शिक्षा, व्यवसाय तथा बसानेके काममें काफी समय, धैर्य और आर्थिक व्यवस्थाकी आवश्यकता है। इस कामको पूरा करनेमें समय लगेगा और जब तक यह काम पूरा न हो जाय, हमारे विकासका क्रम ढीला ही रहेगा।

किसी भी व्यक्तिका सुख उसके धन-वैभव पर नहीं, बल्कि आध्यात्मिक विकास पर आश्रित है। लेकिन एक देशका सामुहिक सुख आध्यात्मिक प्रकाशके साथ-साथ उसके भौतिक विकास पर भी निर्भर करता है। अमेरिका बहुत अधिक धनी देश है। वैभव दासकी तरह वहाँ नृत्य करता है। कोई भी व्यक्ति वहाँके सुखोंको देखकर तरस सकता है। जब वहाँके मजदूर १२००) माहवार पाते हैं, तो फिर ऊपरके दर्जेके लोगोंका कहना ही क्या? लेकिन इससे यह नहीं समझा जाना चाहिये कि वहाँके लोगोंका व्यक्तिगत जीवन बहुत ही सुखी है। उनकी भी समस्यायें और कठिनाइयां हैं। अपनी आवश्यकतायें उन्होंने इतनी बढ़ा रखी हैं कि अधिकांश मजदूरोंको मिलनेवाली मोटी रकम प्रायः महीने के प्रथम सप्ताहमें ही खर्च हो जाती है। यही कारण है कि आज अमेरिकामें सबसे अधिक हड़तालें हो रही हैं।

हमारे कहनेका मतलब यह है कि व्यक्तिगत दृष्टिसे हमें आध्यात्मिक तथा सामुहिक दृष्टिसे भौतिक विकासकी ओर अग्रसर होना होगा। भौतिक विकास औद्योगिक विकासका ही दूसरा

नाम है। लेकिन औद्योगिक विकासमें हम जो शक्ति लगाते, उसका अधिकांश भाग पाकिस्तानसे आये हुए लोगोंको बसानेमें खर्च हो रहा है। अंग्रेजोंकी मेहरबानीका भारी बोझ तो हमें ढोना ही पड़ेगा।

पाकिस्तानकी सृष्टिके कारण हमारा खर्च बहुत अधिक बढ़ गया। पहले तो सेना और पुलिसकी ही हमारे यहाँ आवश्यकता विस्तृत हो गयी। सीमाका विस्तार इसका प्रधान कारण है। संयुक्त भारतकी सीमाकी चौकसीका उत्तरदायित्व तीन ओरसे समुद्र और एक ओरसे हिमालय पहाड़ पर था। सेनाको बहुत थोड़े हिस्सेकी रखवाली करनी पड़ती थी। लेकिन आज लगभग दो हजार मील विस्तृत सीमाकी रक्षा हमारे जवानोंको करनी पड़ती है। इसके साथ ही सीमाके समीपवर्ती क्षेत्रोंमें चोर-डाकुओंको सीमा पार कर अपना काम बना लेनेका पूरा अवसर मिलता है। इस कारण स्वभावतः ही इन क्षेत्रोंमें पुलिसकी संख्या बहुत अधिक बढ़ानी पड़ी है।

साथ ही बहुसंख्यक चुंगीके अड्डोंका निर्माण करना पड़ा। इस विभागका भी बढ़ा हुआ खर्च हमारे सिर आ गया है। विभाजनके पहले केन्द्रीय सरकारके खर्चका कुछ अंश उन क्षेत्रोंसे भी प्राप्त होता था, जिन्हें आज पाकिस्तान कहा जाता है। लेकिन अब दिल्लीके खर्चका पूरा बोझ भारतीय अंशोंको ही सम्भालना पड़ता है।

काश्मीरका प्रश्न भी स्वतंत्रता प्राप्तिके साथ ही हमारे सामने

आया। उसकी रक्षामें भी हमें अपनी आमदनीका एक खासा भाग खर्च करना पड़ा और आज भी करना पड़ रहा है।

एक ओर तो हमारा खर्च बहुत बढ़ गया और दूसरी ओर हम पहलेकी भी अपेक्षा गरीब हो गये। संयुक्त भारतमें वर्गमील पीछे २४६ आदमी बसते थे। लेकिन आज यह संख्या बढ़कर २६२ हो गयी है। यदि इसमें पाकिस्तानसे आये हुए लोगोंकी संख्या मिला दी जाय, तब तो वर्गमील पीछे आबादीकी संख्या और भी घनी हो जायगी। एक तो उद्योग-धन्धेको कौन कहे, हमारी कृषि भी विकसित अवस्थामें नहीं है। लेकिन इस अर्द्ध विकसित अवस्थामें भी आदमी पीछे भूमि इतनी कम है कि दूसरे देशोंकी संख्याको तुलनात्मक दृष्टिसे देखने पर परेशान हो जाना पड़ता है। नीचे अन्य देशोंकी जनसंख्या और क्षेत्रफल तुलनात्मक दृष्टिसे विचार करनेके लिये दिये जाते हैं :—

देशका नाम	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	जनसंख्या	प्रत्येक वर्गमील पीछे आबादी
अस्ट्रेलिया—	२,९७४,५८१—	८,१८५,५३९	—३
कनाडा—	३,४९९,११६—	११,५०६,६५५	—४
संयुक्तराष्ट्र अमेरिका—	३,५५८,८३०—	१५३,६७९,१६७—	४३
भारत (संयुक्त)—	१,५८१,४१०—	३८८,९९७,६५५—	२४६
भारत (विभाजित)—	१,२१८,३२७—	३१८,७७६,०००—	२६२

उपर्युक्त आंकड़ोंकी अपनी खास कहानी है। संसारमें भूमिका विभाजन जब तक न्यायपूर्ण ढंगसे न होगा, तब तक अमेरिका

जैसे देशमें अधिकताके कारण अन्न जलाये जाते रहेंगे और भारत जैसे देशमें लोग आवश्यकताकी पूर्ति करनेमें भी कठिनाई अनुभव करेंगे। भारतके प्रत्येक वर्गमीलमें जितने आदमी बसते हैं, उतने ही आदमी अस्ट्रेलियामें १०० वर्गमील पर अधिकार कर चैनकी वंशी बजा रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीयताको सहानुभूतिपूर्ण तथा व्यावहारिक बनानेमें, जो कठिनाइयां हैं, उनमें भिन्न-भिन्न देशोंके निवासियोंके बीच भूमिका औसत भी एक प्रधान कारण है। विश्व सरकारका स्वप्न उस समय तक सार्थक नहीं हो सकता और न महायुद्धोंका ही खतरा मिट सकता है, जब तक भौगोलिक दृष्टिसे धनवान देश दूसरोंके साथ समताके पैमाने पर अपनेको तौलने के लिये तैयार न हो जायँगे।

भूमिकी इतनी अधिक कमी होने पर भी आज भारतमें खाली जमीनोंकी बहुत अधिकता है। अङ्गरेजी शासनकालमें परतंत्रता के कारण हम कोई विकास न कर पाये। वर्तमान सामुहिक युगमें सामुहिक उद्योगके बिना कुछ नहीं हो सकता और इस प्रकारके उद्योगका साधन सरकारके पास ही रहता है। साथ ही कृषि विकास, औद्योगिक विकासके बिना पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि वैज्ञानिक ढंगसे खेती करनेमें इतनी अधिक मेशीनों और साधनोंकी आवश्यकता पड़ती है कि औद्योगिक विकासके बिना कृषि-सम्वन्धी किसी भी योजनाको सफल वनाना कठिन है। केवल विदेशोंसे प्राप्त साधनोंके वल पर हम सफल नहीं हो सकते।

स्वतंत्रता प्राप्तिके वाद नाना प्रकारके विकासोंकी ओर हमारा

ध्यान गया है। इन विकासोंके लिये प्रचुर साधनोंकी आवश्यकता है। परन्तु हमारे स्वल्प साधनोंका अधिक भाग विभाजन सम्बन्धी समस्याओंसे युद्ध करनेमें खर्च हो रहा है। हमारी कठिनाइयाँ अनेक हैं। फिर भी सामुहिक उद्योगके द्वारा हम सफलताकी ओर अग्रसर हो सकते हैं।

(३)

महान् दार्शनिक साधु टी० एल० वास्वानीका कथन है:—

"No Mukti without Shakti. If you want to achieve Mukti, you must achieve Shakti." (शक्तिके बिना मुक्ति नहीं हो सकती। यदि मुक्ति चाहिये, तो शक्तिका संचय कीजिये।) यह कथन आज हमारे पथ-प्रदर्शक का काम कर सकता है। परतंत्रताकी बेड़ी कटनेसे राजनीतिक दृष्टिसे तो हमें मुक्ति मिल गयी, परन्तु इसका कोई व्यावहारिक फल अभी तक हमारे सामने नहीं आया। जनसाधारणकी कठिनाइयाँ ज्योंकी त्यों यों हैं।

इस दृष्टिकोणसे देखने पर हमारी मुक्तिकी अपूर्णता स्पष्टतः प्रकट हो जाती है। यह अपूर्णता उस समय तक ज्यों की त्यों बनी रहेगी, जब तक हमें अपनी दरिद्रता से मुक्ति न मिल जाय। भौतिक दृष्टिसे जीवनको सुखी बनानेके लिये जिन साधनोंकी आवश्यकता पड़ती है, उनमेंसे आज हमारे देशमें प्रत्येकका अभाव है।

हमारी शक्ति का सामूहिक उपयोग उन अभावों की पूर्ति में
होना चाहिये। इस दिशामें सफलता प्राप्त करनेके लिये हमें
अपनी शक्तिका एक-एक बूँद केन्द्रित करना होगा। इस महान्
देशकी महान् कठिनाइयों का दूर करना एक महान् कार्य है और
इसके लिये महान् उद्योगकी आवश्यकता पड़ेगी। अमेरिकाके
विश्व-विख्यात उद्योगपति हेनरी फोर्डने अपनी आत्म-कथामें
लिखा में—"It is failure that it is easy. Success is
always hard (असफल होना आसान है। सफलताके लिये
तो बराबर कठिन प्रयत्न करना पड़ता है।)

प्रतियोगिताके वर्तमान युगमें सफलता प्राप्त करनेके लिये हमें
अपने साधनोंका पूर्ण उपयोग करना पड़ेगा। भारत कृषि-प्रधान
देश समझा जाता है। लेकिन आश्चर्यकी बात तो यह है कि अन्न
के मामले में भी हम स्वावलम्बी नहीं हैं। करोड़ों रुपयेका अन्न
हमें उदरपूर्तिके लिये प्रतिवर्ष विदेशोंसे खरीदना पड़ता है। प्रत्येक
मामलेमें हम परतन्त्र हैं। अपनी आवश्यकताकी अधिकांश चीजें
हमें विदेशोंसे मंगानी पड़ती हैं। उद्योग-धन्धोंके विस्तारके
सिलसिलेमें सालाना करोड़ों रुपयेकी मेशीनोंके अतिरिक्त आमोद-
प्रमोदकी चीजों तथा दवाइयोंके लिये भी हम विदेशोंके मुँहताज
हैं। चीजोंकी कौन कहे, रुपयोंकी आवश्यकता भी हमें विदेशों
से पूरी करनी पड़ती है। फिर हमारी मुक्ति कैसे हुई ?

वास्तविक मुक्ति प्राप्त करनेके लिये हमें पूर्ण दृढ़ निश्चयताके
साथ अपनी असमर्थताओं और कमजोरियोंको दूर फेंकना

होगा। नेपोलियन प्रायः कहा करता था—"The truest wisdom is a resolute determination." (दृढ़ निश्चयता ही सबसे बड़ी बुद्धिमानी है।) नेपोलियनका यह कथन किसी भी राष्ट्र या व्यक्तिके लिये सच्चे पथ-प्रदर्शकका कार्य कर सकता है।

विकासकी ओर अग्रसर होते समय हमें अमेरिका जैसे विकसित देशकी ओर दृष्टिपात करना होगा। वहाँ आश्चर्य्यजनक औद्योगिक विकासके साथ-साथ कृषिका भी पूर्ण विकास हुआ है। नवीन वैज्ञानिक साधनोंका उपयोग कर खेतों की उत्पादन शक्ति बहुत बढ़ा दी गई है। यूरोपके जिन देशोंके निवासी वहाँ जा बसे थे, उनका पहले ही औद्योगिक विकास हो चुका था। इस कारण अमेरिका के विकास में अधिक समय न लगा।

कृषि-विकास और औद्योगिक-विकास हमें समान रूपसे करना होगा। भूमिकी शक्तिको दो भागोंमें बांटा जा सकता है। एक अन्न-उत्पादन शक्ति तथा दूसरी खनिज-पदार्थ-धारण शक्ति। प्रथम शक्तिके द्वारा हमें भोजनकी सामग्री मिलती है और द्वितीय से हमारा उद्योग-धन्धा चलता है।

भूमिकी इन शक्तियोंके विकासके लिये मानवशक्तिकी आवश्यकता होती है। इन दोनों शक्तियों का संयोग मानवशक्ति से होने पर औद्योगिक विकास होता है। कृषि तथा उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिका एक ही उद्देश्य हो सकता है और वह है जनता की आवश्यकताओंकी पूर्ति कर, उसके जीवनको सुखी बनाना।

जो देश इस उद्देश्य की पूर्ति कर सके, उसकी ही पूँजी विस्तृत तथा सुव्यवस्थित समझी जायगी। अतएव देशको सुखी बनानेके साधनको हम पूँजी कह सकते हैं।

प्राचीन भारत प्रत्येक दृष्टिसे विकासकी चोटी तक पहुँच चुका था। कृषि विकासमें पूर्णता प्राप्त करनेके बाद यहाँ वैज्ञानिक विकास हुआ। हमारे धार्मिक-ग्रन्थोंमें नाना प्रकारके चमत्कार-पूर्ण यन्त्रों तथा अस्त्रोंके उल्लेखसे यह बात स्पष्टतः प्रमाणित हो जाती है। विज्ञानके द्वारा जो प्रचुर शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्र मिलते हैं, उनका दुरुपयोग कर मानव जातिने सदासे मानवताको कलंकित किया है। युद्धके दिनोंमें तो युद्ध होता है। लेकिन बादमें इसकी भीषण प्रतिक्रिया युद्धसे सम्बन्धित लोगों पर होती है। फलस्वरूप प्रत्येक महायुद्ध के बाद स्थायी शान्तिकी चेष्टा होती आई है।

वर्तमान सदी में भी प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धके बाद क्रमशः "लीग आफ नेशन्स" तथा "संयुक्त राष्ट्रसंघ" की सृष्टि इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये हुई। प्राचीन भारतमें भी जब महाभारतका भीषण युद्ध हुआ, जो समूचा देश युद्धसे मुक्ति पाने का मार्ग ढूंढ़ने लगा। युद्ध करनेवाले भी युद्धसे ऊब गये। फलस्वरूप महाभारत युद्धके विजेता पाण्डव अपने अस्त्र-शस्त्रको नष्टकर शान्तिकी खोजमें हिमालयकी ओर चले गये।

भौतिक विकासका एकाधिपत्य हो जाने पर ही युद्ध की सृष्टि होती है। इस दोषको दूर करनेके लिये भौतिक विकासके साथ-

साथ आध्यात्मिक विकास भी करना चाहिये। प्राचीन भारतके निवासियोंको यह तथ्य समझनेमें विलम्ब न लगा। इस कारण महाभारतके युद्धके बाद यहां पुनः मानसिक विकासकी चेष्टा हुई। फलस्वरूप महावीर तथा गौतमबुद्ध जैसे अनन्त शान्तिके प्रचारकोंका आविर्भाव हुआ।

लेकिन इस अवसर पर एक भूल यह हुई कि देशने आध्यात्मिक विकासके साथ-साथ भौतिक विकासकी रक्षाका कोई प्रयत्न नहीं किया। सभी आध्यात्मिक विकासमें ही पूर्णतः लग गये। इस भूलका कडुआ फल हमें चखना पड़ा। भौतिक पहलू से सुसंगठित विदेशियों के आक्रमणों के हम शिकार हुए। धार्मिक भावनाओंमें सना हुआ भारत अधिक दिनों तक इन आक्रमणकारियोंसे अपनी रक्षा न कर सका। हम पराधीन हो गये।

वर्त्तमान समयमें हमें इस कटु अनुभवसे लाभ उठाना होगा। आध्यात्मिक विकासकी पृष्ठ-भूमि हमारी संस्कृतिमें मौजूद है। पश्चिमके वर्तमान वैज्ञानिक विकासके सहारे हमें भौतिक विकास करना होगा। लेकिन इस स्थल पर भी हमें सावधान रहना चाहिये। भौतिक विकास यदि पूर्ण योजनासे न किया जाय, तो इसमें कई प्रकारके दोप आ जाते हैं। एक तो यह कि यत्र-तत्र पूंजीके एकत्रीकरणसे "प्रत्येक व्यक्तिके प्रति समानता" के भावमें वाधा पड़ती है। अतएव भौतिक विकास द्वारा प्राप्त साधनोंका उपयोग हमें आध्यात्मिक विकासमें भी

करना होगा। इस तरह दोनों विकासों का समान सम्मिश्रण कर हम अपने देशको सम्पदापूर्ण बना सकेंगे।

वर्तमान कठिनाइयोंसे मुक्ति पानेके लिये संसारको एक नवीन दृष्टिकोणकी आवश्यकता है। प्रथम विश्वयुद्धके बादसे ही संसारके प्रमुख राष्ट्र शान्तिका मार्ग ढूँढ़नेकी चेष्टा कर रहे हैं। उस युद्धके बाद संसारके राष्ट्रोंने एक सम्मिलित योजनाके आधार पर अस्त्रों का प्रचुर उत्पादन बन्द कर दिया। लेकिन अस्त्र-शस्त्र बनानेके साधनोंका निर्माण वे औद्योगिक उन्नतिके नाम पर करते गये। फल यह हुआ कि राजनीतिक तापमानमें थोड़ा भी हेरफेर होनेके बाद धड़ल्लेसे भीषण अस्त्रोंका निर्माण होने लगा। द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्धकी समाप्तिके बाद आज भी उसी नाटकका "रिहर्सल" हो रहा है।

संसारके वर्तमान नेता-राष्ट्रोंकी नस-नसमें यूरोपकी भौतिक सभ्यता भरी हुई है। अतएव शान्तिकी चेष्टा करते समय वे एक मौलिक तत्त्वको भूल जाते हैं। मनुष्यके अन्दर एक स्वाभाविक शक्ति होती है। इसका उपयोग करनेके लिये उसे कोई न कोई काम अवश्य करना पड़ता है। बच्चेके पास कोई काम नहीं होता। फिर भी अपनी शक्तिका उपयोग वह घरमें रखी चीजोंको एक ओरसे हटाकर दूसरी ओर रखनेमें करता है। यदि अन्य किसी कामकी ओर उसका ध्यान नहीं गया, तो अपनी शक्तिके उपयोगकी चेष्टामें वह घरकी किसी न किसी चीजको नष्ट ही कर डालता है। किसी भी राष्ट्र या जातिके सम्बन्धमें यह बाल प्रकृति पूर्णतः लागू है।

यदि संसारके युद्धप्रिय राष्ट्रोंके मस्तिष्कसे युद्धकी भावना निकालनी है, तो उनके अन्दर प्राचीन भारतकी तरह आध्यात्मिक भावना की सृष्टि करनी होगी। परन्तु आज इस प्रकारकी कोई चेष्टा नहीं हो रही है। केवल शान्ति-शान्तिका ढोल पीटा जा रहा है और इस ढोलके पर्देके पीछे संसारको मटियामेट करनेकी शक्ति रखनेवाले सामरिक साधनोंका निर्माण हो रहा है।

इस तरह हम देखते हैं कि संसारमें अनिश्चितताका बोलबाला है। इस असुविधाजनक पृष्ठभूमिमें ही नवीन भारतको अपने कल्याणका मार्ग निकालना होगा। अपनी प्राचीन संस्कृतिकी विशालताके कारण हमारे अन्दर कई अविकसित शक्तियां हैं। उन सुप्त-शक्तियोंको जाग्रत कर हम अपनी कठिनाइयोंको हल्का कर सकते हैं।

आवश्यकता इस बातकी है कि हम अपने वास्तविक रूपको समझें और उसके अनुसार विकास-पथकी ओर अग्रसर हों। अंग्रेजीके सुप्रसिद्ध कवि टेनिसनका कथन है :—"Self reverance, self knowledge, self control, these three alone lead life to sovereign power" (आत्मसम्मान, आत्मज्ञान तथा आत्मसंयम ही तीन ऐसे पदार्थ हैं, जिनसे पूर्ण शक्ति सम्पन्नता प्राप्त होती है।) उन्नति-पथकी ओर अग्रसर होते समय हमें इन तत्त्वोंका विकास करना होगा। सम्भव है कि अपने परित्राणका हम जो मार्ग निकालें, उससे संसारके अन्य देशोंको भी वर्त्तमान कठिनाइयोंसे निकलनेमें सहायता मिले।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

यह परम दुर्भाग्यकी बात है कि एक गौरवपूर्ण संस्कृतिके उत्तराधिकारी होते हुए भी आज हम इस हीन अवस्थाको पहुँच गये हैं। मानव-कल्याणके विवादरहित तथा सर्वमान्य आधार पर अवलम्बित होनेके कारण हिन्दू अथवा भारतीय संस्कृति सदासे संसारका आदर प्राप्त करती आई है। परतन्त्रताके दिनोंमें भी जब युवक संन्यासी स्वामी विवेकानन्दने अमेरिकामें विश्वधर्म सम्मेलनके अवसर पर हिन्दू-संस्कृतिका मधुर राग अलापा तो अमेरिका झूम उठा। स्थान-स्थान पर वेदान्त सोसाइटियोंकी स्थापना हुई। नई दुनियांके लोग नये प्रकाशमें नये ज्ञानकी साधनामें लग गये।

स्वामी विवेकानन्दने अमेरिकामें हिन्दू-धर्मको विश्व-धर्मके नामसे सम्बोधित किया था। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि उपस्थित समुदायने भारतीय संन्यासीके इस दावेको महत्त्वका वह स्थान दिया, जो उसके उपयुक्त था।

हिन्दू-धर्म और संस्कृति वस्तुतः विश्व-प्रेम तथा अनन्त सत्यके आधार पर अवलम्बित है। एटम बमके भयसे कम्पित संसार आज भी भारतकी ओर आध्यात्मिक नेतृत्वके लिये टकटकी लगाये बैठा है। क्या हम यह आशा पूरी कर सकेंगे? आत्मज्ञानके

साथ-साथ आज भी आत्मविश्वासकी भावना हममें वर्तमान है। किसी भी वस्तुका संयोग जब आत्मविश्वासके साथ होता है, तो उसमें प्रकाण्ड शक्ति आ जाती है।

लेकिन इस समय तो हमें अपने आपको कठिनाइयोंके गहरे पंकसे निकाल कर सुव्यवस्थाके सुखद मार्ग पर लाना है। इस कारण अपनी सुप्त-शक्तियोंका पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेना हमारे लिये आवश्यक है। किसी भी व्यक्ति अथवा राष्ट्रकी शक्तिका आरम्भिक आधार उसकी संस्कृति अथवा संस्कार ही समझा जा सकता है। हनुमानजी अपनी वीरताका परिचय उस समय ही दे सके, जब उन्हें उनकी शक्तिका स्मरण दिलाया गया। अतएव अपनी प्राचीन संस्कृतिका सिंहावलोकन कर हमें आत्म-ज्ञान तथा आत्म-विश्वासके भण्डारकी वृद्धि करनी चाहिये।

(२)

संस्कृतिका साधारण अर्थ होता है—"सुधरी हुई अवस्था।" भिन्न-भिन्न देशोंके निवासियोंने अपनी अवस्था सुधारनेका प्रयत्न जिस रूपमें किया, उस देशकी संस्कृति उस रूपमें ही दिखलायी पड़ी है। संस्कृतियोंके आधारको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—एक धार्मिक और दूसरा राष्ट्रीय। भारतीय संस्कृतिके सुदृढ़ भवनका निर्माण राष्ट्रीयताकी मजबूत ईंटोंके द्वारा हुआ है।

मनुष्य शरीर आत्माके संयोगसे बनता है। ठीक इसी तरह एक राष्ट्र धार्मिकता और राष्ट्रीयताके संयोगसे अपना विकास

करता है। मनुष्यकी व्यक्तिगत उन्नति धार्मिकताके आधार पर ही हो सकती है, परन्तु राष्ट्रको आगे बढ़नेके लिये कर्मठताकी आवश्यकता पड़ती है। राष्ट्रोंका निर्माण मनुष्योंके विराट समुदायोंके द्वारा ही होता है। यदि राष्ट्रके निवासियोंका व्यक्तिगत जीवन धार्मिकतापूर्ण है, तो राष्ट्रके नैतिक स्वरूप पर अवश्य उसका प्रभाव पड़ेगा। इस तरह धार्मिकता राष्ट्रोंकी आत्माका रूप धारण कर लेती है, लेकिन सामूहिक रूपमें राष्ट्रको कर्मठताका विकास करना पड़ता है। इस पहलूको हम राष्ट्रका शरीर कह सकते हैं। इस तरह प्रगाढ़ धार्मिकता तथा दृढ़तापूर्ण कर्मठताके द्वारा प्रत्येक राष्ट्र अपना सर्वाङ्गपूर्ण विकास कर सकता है। यदि एक विशालकाय तथा बलिष्ठ शरीर वाले व्यक्तिकी आत्मा निर्बल हो तो वह केवल शारीरिक शक्तिके प्रयोगसे ही अपनी उन्नति नहीं कर सकता। ठीक इसी तरह यदि कोई कर्मठ राष्ट्र धार्मिकताकी भावनासे दूर रहा, तो वह कभी कर्मठतासे अपनेको पूर्णतः लाभान्वित नहीं कर सकता।

धार्मिकताका तात्पर्य नियमित और संयमपूर्ण जीवनसे है। प्राचीन भारतीय संस्कृतिकी गहराई तक पहुँचनेकी चेष्टा करनेके पहले हम इस पहलूको स्पष्ट करनेके उद्देश्यसे राष्ट्रपिता महात्मा गांधीकी चर्चा आवश्यक समझते हैं। गांधीजीने अपने जीवनको इस प्रकार नियमित तथा संयमपूर्ण बना लिया था कि धार्मिकता-की भावनासे ओत-प्रोत भारतीय जनताको एक जादूगरकी तरह वे प्रभावित कर सके। उनका प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलन संयमके

मजबूत धागेसे बँधा होता था। इस कारण उनके राजनीतिक स्वप्नकी ऊँचीसे ऊँची उड़ान भी व्यावहारिक और सफल होती गयी। संसारके सबसे बड़े साम्राज्यको निःशस्त्र सैनिकोंके द्वारा भारतसे भगा देनेका गांधीका स्वप्न कुछ कम साहसपूर्ण न था। लेकिन उस युग-पुरुषके संयमने उनके अनुयायियोंके अन्दर अद्भुत आत्म-बल और नैतिक-शक्ति भर दी। अतएव उनके साहसपूर्ण कार्यको सफलताका जामा पहनते देर नहीं लगी।

सत्य और संयम पर गांधीवाद आश्रित है। गांधी जनतासे ऐसी कोई मांग न करते थे, जिसकी पूर्ति व्यक्तिगत रूपसे वे स्वयं न कर सकें। उनकी नैतिकतासे भारतकी प्राचीन भावनायें एक बार फिर नवीन रूपमें संसारके सामने आ गयीं।

(३)

भारतके प्राचीन साहित्यके अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान-विज्ञानके कतिपय अंगोंपर भारतने अधिकार प्राप्त कर लिया था। वर्त्तमान वैज्ञानिक-युगने संसारके सामने अनेक चमत्कारोंको रखा है। यदि अपनी आँखों हम इन चीजोंको न देखते, तो इनके अस्तित्व पर विश्वास करना कठिन हो जाता। प्राचीन भारतीय ग्रन्थोंमें नाना प्रकारकी आश्चर्यपूर्ण चीजोंका उल्लेख है। आजसे लगभग चालीस साल पहले तर्कशील व्यक्ति आश्चर्यपूर्ण चीजोंके वर्णनको कवि-कल्पना कहकर ही सन्तोष कर लेते थे। लेकिन जब वर्त्तमान विज्ञानने उन चीजोंसे मिलती-जुलती

चीजें आँखोंके सामने रखीं, तो लोगोंको मानना पड़ा कि प्राचीन कालमें भारत वैज्ञानिक उन्नतिके चरम शिखर पर पहुँच चुका था।

अपने ग्रन्थोंमें हम देखते हैं कि युद्ध-भूमिसे मीलों दूर बैठे संजय अन्धे धृतराष्ट्रको युद्धकी सारी कहानी ज्योंकी त्यों सुना देते थे। बड़े-बड़े ऋषियोंकी वाणीमें हम संहारके साथ-साथ रक्षाकी भी आलौकिक शक्ति पाते हैं। रावणका पुष्पक विमान हमारे सामने है। ऋषि विश्वामित्रको हम नवीन सृष्टिकी चेष्टामें पाते हैं। नल दीपक रागके द्वारा अग्नि प्रज्वलित कर देता है।

आजके वैज्ञानिक जब निकट भविष्यमें चन्द्रलोक तक पहुँचनेकी आशा रखते हैं और मृत शरीरमें प्राण डालनेकी क्रियाका प्रयोग जारी है, तो यह मानना पड़ेगा कि प्राचीन भारतीय ग्रंथोंमें जिन चमत्कारोंका उल्लेख है, वे तत्कालीन वैज्ञानिक विकासके संक्षिप्त परिचय मात्र हैं। आजका वैज्ञानिक विकास वाहरी साधनोंके संयोगसे किया गया है। वैज्ञानिकोंमें नहीं, बल्कि उनके द्वारा निर्मित यन्त्रोंमें हम अद्भुत शक्ति पाते हैं। परन्तु प्राप्त प्राचीन वर्णनोंसे मालूम पड़ता है कि भारतीय वैज्ञानिकोंने अपनी आन्तरिक शक्तिका विकास कर चमत्कार प्राप्त किया था।

आजकी वैज्ञानिक प्रगति विशेषतः विद्युत-शक्ति पर आश्रित है। वाहरी साधनोंका सम्मिश्रण कर विद्युतका निर्माण होता है और फिर उस शक्तिका संयोग नाना प्रकारकी किरणोंसे कर भिन्न-भिन्न चमत्कारपूर्ण फल प्राप्त किये जाते हैं। मानव-शरीरमें भी विद्युत-शक्तिके कण मौजूद हैं। विकास अथवा संयमके द्वारा

यह शक्ति बहुत अधिक बढ़ायी जा सकती है। प्राचीन कालके भारतीय इस आन्तरिक शक्तिका विकास कर नाना प्रकारकी चमत्कारपूर्ण शक्ति प्राप्त कर लेते थे। लेकिन आजके वैज्ञानिक विद्युत, प्रकाश और ध्वनिका वैज्ञानिक ढंगसे संयोग कर नाना प्रकारका चमत्कार दिखलाते हैं। उदाहरण स्वरूप टाकी निर्माणको लिया जा सकता है। वैज्ञानिक क्रियाओंके द्वारा ध्वनि और प्रकाशको एक दूसरेमें बदल दिया जाता है। शब्दोंकी झंकार प्रकाशका रूप धारण कर लेती है और किरणकी चमक शब्द बन जाती है। फिर विद्युतके सहारे वे वास्तविक रूपमें दिखलायी पड़ते हैं। इस आधार पर ही टाकी विज्ञानका निर्माण हुआ है।

वर्तमान युगके वैज्ञानिक शरीरकी आन्तरिक शक्तियोंके विकासका मार्ग अभी तक नहीं निकाल सके हैं। उनका लीला-क्षेत्र यन्त्रोंके निर्माण तक ही सीमित है। लेकिन इसके प्रतिकूल प्राचीन कालके भारतीय शरीरकी आन्तरिक शक्तियोंके विकासमें अद्भुत सफलता प्राप्त कर सके थे।

(४)

सरसरी नजरसे ऊपर प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक विकासकी हल्की रेखा अंकित करनेकी चेष्टा की गयी है। प्रत्येक दिशामें भारतने अपने आलोकसे संसारको प्रभावित किया था। भौतिक विज्ञानसे लेकर गहन आध्यात्मिक समस्याओंका हल हमारे ग्रंथोंमें

मिलता है। ईसाके जन्मके सदियों पहले भारतीय चमत्कारकी पताका युरोपसे लेकर सुदूर पूर्व फिलिपाइन तक फहरा चुकी थी। जहां अन्य देशोंने तलवारके बल खूनकी नदी बहा दूसरे देशों पर आधिपत्य स्थापित किया, वहां प्राचीन भारतने सांस्कृतिक विकासके सहारे प्रेम और सेवाकी गंगा बहाकर संसारके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें प्रेमपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

बौद्ध-धर्मके प्रादुर्भावके बाद बौद्ध-भिक्षुकों तथा राजाओंने संसारके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें अपने धर्मका प्रचार किया। परन्तु इसके बहुत पहले आर्य संसारके अनेक भागोंमें फैल चुके थे। वैदिक कालके आरम्भसे ही आर्य संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें फ़ैलने लगे थे। इसका प्रमाण ऋग्वेद (१०।६५।११) के "कृण्वन्तो विश्वमार्यम" (संसारको आर्य बनायें) आदि कथनोंसे मिलता है। ईसाकी पहली सदीमें ब्राह्मण-धर्म जावा, सुमात्रा तथा बालीमें फैल गया था। इसके चिन्ह आज भी वहां विद्यमान हैं। बाल्मीकि रामायणके किष्किन्धा काण्डमें जावाका यव द्वीपके नामसे उल्लेख है। चीनी यात्री फाहियानने लिखा है कि ईसाकी चौथी सदीमें ब्राह्मण जावामें रहते थे। बालीमें तो आज भी कितने ही प्राचीन हिन्दू मन्दिर वर्तमान हैं।

मुसलमानोंके आगमनके पहले भारतमें सिकन्दरके समयसे लेकर जितने भी विदेशी आये, वे भारतीय संस्कृतिको अपनाते गये और पूर्व निवासियोंमें मिलते गये। इस संस्कृतिको हम हिन्दू संस्कृति भी कह सकते हैं।

इस सम्बन्धमें यह ध्यान देनेकी बात है कि वेदोंमें कहीं भी "हिन्दू" शब्द नहीं आया है। आर्य नामका ही प्रत्येक स्थल पर उल्लेख है। हिन्दू शब्दकी उत्पत्ति ईरानसे हुई है। ईसा पूर्व लगभग सातवीं सदीमें ईराकमें पारसियोंके धार्मिक ग्रंथ "अवेस्ता" का निर्माण हुआ। उसमें हिन्दू शब्दका प्रयोग पाया जाता है।

वर्तमान समयके पारसी ईरानियोंके ही वंशज हैं। भारतीय द्विजोंके समान प्राचीन कालके ईरानी भी यज्ञोपवीत धारण करते थे। इसे कुस्ती कहा जाता है। गलेके बदले ईरानी इसे कमरमें पहनते थे। प्राचीन ईरानियोंके वंशज होनेके कारण पारसी आज भी कमरमें कुस्ती धारण करते हैं।

आर्योंकी तरह ईरानी भी पुनर्जन्ममें विश्वास रखते थे। उनके घरोंमें बराबर अग्नि प्रज्वलित रखी जाती थी। साथ ही उनके यज्ञ भी बहुत कुछ वैदिक यज्ञके समान होते थे। इससे मालूम पड़ता है कि अति प्राचीन कालमें भारतीय अग्निहोत्री ब्राह्मणोंकी कोई शाखा ईरानमें जा बसी थी। इनके वंशजोंने ही सर्वप्रथम "हिन्दू" शब्दका व्यवहार किया। इसकी उत्पत्ति "सिन्धु" से हुई है। वैदिक कालमें आर्य पंजाबके ही क्षेत्रमें बसे थे, जिसे सप्त सिंधुके नामसे संबोधित किया जाता था। इरानकी भाषा 'जेंद'में संस्कृत'स'का उच्चारण "ह" की तरह होता है। इस तरह "सप्त सिन्धु" का उच्चारण "हप्त हिन्धु" हुआ। बादमें "हप्त" लुप्त हो गया और "हिन्धु" के अपभ्रंश "हिन्दू" से सप्त सिन्धु क्षेत्रमें बसनेवाले आर्योंका बोध होने लगा। फिर तो आर्य ग्रन्थोंमें भी हिन्दू शब्द

का प्रयोग आरम्भ हुआ। युनानी भाषामें अपभ्रंश होकर "हिन्दू" शब्दका उच्चारण "इण्डु" और "इण्डो" होने लगा। इसके आधार पर अंग्रेजीमें "इण्डिया" शब्दका निर्माण हुआ। इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दू शब्दका आधार धार्मिक नहीं, बल्कि भौगोलिक तथा राष्ट्रीय है।

भाषा सम्बन्धी पहलूको छोड़ कर हम इस प्रश्न पर दूसरे पहलुओंसे भी विचार कर सकते हैं। भारतमें बसनेवाले जिन लोगोंने चाहा, अपने लिये हिन्दू संज्ञाका व्यवहार पूर्ण स्वतन्त्रताके साथ किया। उनके धार्मिक मतामतके कारण इस दिशामें कोई बाधा उपस्थित न हुई। बौद्ध तथा जैन धर्मने न केवल वेदोंकी सत्ता ही अस्विकार की, बल्कि उनकी निन्दा भी की है। फिर भी उन धर्मोंको माननेवाले अधिकारपूर्वक हिन्दू कहे और समझे जाते हैं। जैनियोंके साथ तो आर्य हिन्दुओंका वैवाहिक सम्बन्ध भी होता आता है।

ईसासे पूर्व लगभग ६०० में चार्वाक नामक एक तेजस्वी विचारकका जन्म हुआ। इसने वेदोंको कौन कहे, ईश्वरकी सत्ता भी अस्वीकार कर दी। फिर भी चार्वाक हिन्दू संस्कृतिका गौरव-पूर्ण स्तम्भ माना जाता है।

सत्य और संयमको माननेवाला कोई भी आदमी अपनेको हिन्दू कह सकता है। धर्मोंके कोई न कोई मसीहा (प्रवर्तक) होते हैं। लेकिन हिन्दू धर्मका कोई भी मसीहा नहीं। प्रत्येक

मतामतके लोगोंके लिये इसका द्वार खुला है। इसी कारण इसे विश्वधर्म या मानवधर्म कहा जाता है।

एक दूसरे पहलूसे भी हम इस प्रश्नपर विचार कर सकते हैं। एक हिन्दूके हिन्दुत्वका आधार उसका सत्य और संयममें विश्वास (Conviction) है। अन्य धर्मोंकी तरह इसमें मत-परिवर्तन (Conversion) की आवश्यकता नहीं पड़ती। पूजा-पाठ अथवा किसी प्रकारकी बाहरी दिखावटसे अपनेको न बांधनेके लिये हिन्दू स्वतन्त्र है।

इन विवेचनोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू धर्म तथा संस्कृति किसी धार्मिक रेखासे सीमित नहीं, बल्कि मानव कल्याण की मंगलमय भावनाके असीम सागरसे प्लावित है।

(५)

अब हम वैदिक कालके आरम्भसे भारतीय संस्कृतिके विकास की रेखा अंकित करते हैं। भारतीय संस्कृति ही क्यों मानव-संस्कृतिका लिखित इतिहास ऋग्वेदके प्रथम पृष्ठसे आरम्भ होता है। विश्वने निर्विवाद रूपसे यह स्वीकार किया है कि ऋग्वेद मानव-जातिका सर्व प्रथम ग्रन्थ है।

वैदिक-युगके प्रायः समकालीन ही सिन्धु-घाटीकी सभ्यता समझी जा सकती है। लगभग पचीस साल पहले भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा खुदाई होने पर सिन्धमें लरकाना जिलेके मोहनजोदड़ो तथा पंजाबमें मांटगोमरी जिलेके हड़प्पा नामक

स्थानोंमें प्राचीन भारतीय संस्कृतिकी जानकारीकी कुछ नवीन सामग्रियाँ प्राप्त हुईं। इन स्थानोंमें विकसित नगरोंके स्पष्ट चिन्ह पाये गये हैं। प्राप्त चिन्होंसे स्पष्टतः मालूम पड़ता है कि यहाँके निवासियोंका सामाजिक जीवन पूर्ण विकसित था और वे विशेषतः व्यापारी समुदायके थे। कई वर्षोंके बाद खुदाईका काम बन्द कर दिया गया। इस कारण उन स्थानोंका अध्ययन अधूरा-सा ही रह गया। अभी तक इसका कोई निर्विवाद निर्णय नहीं हो सका है कि सिन्धुघाटीकी इस संस्कृतिका आर्य संस्कृतिसे सम्बन्ध था अथवा यह एक पृथक् संस्कृति थी।

भिन्न-भिन्न कालोंमें हमारे यहाँ नाना प्रकारकी धारायें प्रवाहित हुई हैं। फलस्वरूप भारतीय जीवनमें कभी अध्यात्मिकता और कभी भौतिकताकी अधिकता दिखलायी देती है। लेकिन किसी भी युगमें भारतने आध्यात्मिकताकी पृष्ठभूमिको नष्ट नहीं होने दिया। साधारणतः हम अपनी संस्कृतिको निम्नलिखित ६ भागोंमें विभक्त कर सकते हैं :—

१—वैदिक और सिन्धुघाटी युग।
२—रामायण-महाभारत युग।
३—पौराणिक युग।
४—जैन-बौद्ध युग।
५—शंकराचार्य युग।
६—मुस्लिम युग।
७—युरोपियन संसर्ग युग।

८—गांधी युग।

९—वर्तमान युग।

इन युगोंकी सांस्कृतिक रेखाओंको क्रमबद्ध मिला देनेसे भारतीय संस्कृतिक विराट रूप हमारे सामने आ जाता है। इनका विशद वर्णन एक स्वतन्त्र ग्रन्थका विषय है। फिर भी संक्षिप्त रूपमें इन युगों पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

(६)

वैदिक और सिन्धुघाटी युग

इस कालके सम्बन्धमें अभी तक कोई निर्विवाद निर्णय नहीं हो सका है। कितने ही विद्वान् वैदिक कालको ईसा पूर्व पांच हजार वर्ष और कितने ही ईसा पूर्व दो हजार वर्ष मानते हैं। परन्तु ईसा पूर्व ३००० वर्ष इस सम्बन्धमें व्यापक मान्यता प्राप्त कर रही है। वेदोंसे पता चलता है कि इस कालमें आर्योंने उच्च-कोटिका धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विकास कर लिया था। ऋग्वेदमें उल्लिखित "एक सत् विप्रा वहुधा वदन्ति" (ईश्वर तो एक है, लेकिन विद्वान उसका वर्णन नाना रूपमें करते हैं।) से उच्च धार्मिक विकासका पता लगता है।

इन दिनों आर्योंका उत्तर तथा मध्य भारतमें प्रभाव था। इस कालमें भारतमें चार प्रमुख जातियां बसती थीं—कोल-भील, द्राविड़, सिन्धु घाटीके निवासी तथा आर्य। सिन्धु घाटीमें

बसनेवालोंका जीवन यथेष्ट सुसंस्कृत तथा विकसित था। कोल-भील भारतके आदि निवासी हैं। इनके जीवनमें विकासके चिन्ह कम पाये जाते हैं। प्रकृति द्वारा स्वाभाविक रूपमें प्राप्त पदार्थोंसे ही ये सन्तोष कर लेते थे। द्राविड़ोंका दक्षिण भारतमें प्रभाव था। दक्षिणके प्राचीन साहित्यसे इनके सम्बन्धमें बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है। द्राविड़ उन्नतिकी चेष्टामें थे। दूसरी ओर आर्य इस उद्योगमें थे कि इस देशमें बसनेवाली सभी जातियां किसी संयुक्त प्रणालीका सहारा लेकर उन्नतिकी ओर अग्रसर हों।

"आर्य" शब्दका साधारण अर्थ होता है—"कृषि करनेवाला।" अतएव स्वभावतः ही आर्य अपनी कृषि प्रणालीका विस्तार कर देशमें एकता स्थापित करना चाहते थे। जो लोग कृषि-कार्यको अपनाते गये, उन्हें आर्य कहा जाने लगा। इस तरह आर्योंकी वृद्धि शीघ्रतासे होने लगी।

कृषक होनेके नाते आर्य वर्षाके देवता इन्द्रके विशेष उपासक थे। ऋग्वेदमें इन्द्रकी स्तुति विशेष रूपसे मिलती है। साथ ही अन्य देवताओं तथा विशिष्ठ व्यक्तियोंकी स्तुतिके अतिरिक्त भौगोलिक वर्णन भी है।

जनसंख्या कम रहनेके कारण इस युगमें कोई विशेष संघर्ष नहीं पाया जाता है। प्रत्येक जातिका नेता उसका राजा होता था। नाना प्रकारके यज्ञोंके द्वारा राजागण विद्वानों, सन्तों तथा जनताके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध बनाये रखते थे।

व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवनके रूपमें मानव जीवन दो

भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। आर्योंने जीवनके इन दोनों अंगोंका समान रूपसे विकास किया। व्यक्तिगत जीवनके विकासके लिये चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास) की स्थापना हुई। साथ ही सामूहिक जीवनके विकासके लिये चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र) की सृष्टि की गयी। इस प्रकार आर्य अपने जीवनको शृंखलाबद्ध कर प्रगति की ओर अग्रसर हो रहे थे। वर्ण-विभाजनके फलस्वरूप किसी प्रकारकी असमानताकी भावना उत्पन्न नहीं हो पायी थी। अपने अपने स्थानपर प्रत्येक वर्णका समान महत्त्व था।

वैदिक कालमें कृषिके लिये सिंचाईका प्रबन्ध था। कुओंसे जल निकालनेमें बैल तथा घोड़े जोते जाते थे। इस कालमें भारतवासी समुद्र द्वारा विदेश यात्रा करते थे। संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें इनकी पहुँच थी। ऋग्वेदमें चर्खे द्वारा सूत कातने तथा कपड़ा बुननेका उल्लेख है। विनिमयका माध्यम गाय थी। खरीद-विक्रीके अवसर पर मुद्राके रूपमें गायोंका उपयोग किया जाता था। इस कालमें लोहा तथा अन्य धातुओंका भी उपयोग आरम्भ हो चुका था।

(७)

रामायण-महाभारत युग

ईसा पूर्व १५०० से लेकर ईसा पूर्व ८०० तकके कालको हम रामायण-महाभारत काल कह सकते हैं। एकान्त चिन्तनके द्वारा वैदिक कालमें ज्ञान-विज्ञानका जो प्रकाश प्राप्त हुआ, उसका

उपयोग और कहीं-कहीं दुरुपयोग हम इस कालमें पाते हैं। इस समय तक जनसंख्या बढ़ चुकी थी। इस कारण विपुलताका सुख उपभोग करनेके लिये स्वभावतः पारस्परिक द्वन्द्व आरम्भ हो गया था। रामका वन प्रस्थान, द्रौपदीका चीर-हरण तथा भाइयोंके बीच महाभारतका विनाशकारी युद्ध आदि इसके जीते-जागते प्रमाण हैं।

यह युग प्राचीन भारतके लिये पूर्ण स्मृद्धिका काल था। भौतिकताके प्रसारमें इसकी अधिक शक्ति खर्च हुई। जनसंख्याकी वृद्धिके साथ-साथ नवीन समस्याओंकी उत्पत्ति होती गयी और नवीन प्रणालियोंके सहारे इसके समाधानकी चेष्टा की गयी। महाभारत कालमें आर्यों का विस्तार पश्चिम और पूर्वकी ओर हुआ। लेकिन रामायण कालमें आर्य संस्कृतिने उत्तरसे दक्षिणकी ओर प्रवेश किया।

ः जातियोंके निवासके कारण समय-समय पर संघर्ष होनेके फलस्वरूप कहीं-कहीं युद्धका उल्लेख मिलता है। लेकिन कहीं भी विजेताने पराजित राजाकी प्रजाको कष्ट नहीं दिया और न उनके स्वाभाविक जीवनमें ही किसी प्रकारका हस्तक्षेप किया। संस्कृतिके सहारे लोगोंकी जीवनधारामें समानता लानेका प्रयत्न अवश्य किया गया। लंकामें रावणकी पराजयके बाद उसका भाई विभीषण ही गद्दी पर बिठलाया जाता है तथा रावणकी स्त्री मन्दोदरी महारानीका पद प्राप्त करती है।

विचार-भिन्नताकी वृद्धिके कारण इस कालमें देवताओंकी

संख्या बहुत अधिक बढ़ी। साथ ही इस युगमें देवताओंका अवतरण मानव रूपमें आरम्भ हुआ। राम, कृष्ण तथा परशुराम मनुष्य रूपमें देवता माने गये हैं। राम तथा कृष्णने नवीन सुन्दर नीतिका प्रवाह देशमें बहाया। भौतिक दृष्टिसे जिस रूपमें स्मृद्धि बढ़ती गयी, उसी रूपमें लोगोंके जीवनमें नवीन प्रगतियां आती गयीं। राम तथा कृष्णने इन प्रगतियोंको इस सुन्दर ढंगसे श्रृंखलाबद्ध किया कि लोगोंने वर्तमान युगके गांधीकी तरह उनका नेतृत्व एकमतसे स्वीकार कर लिया। आगे चलकर इस प्रकारका व्यापक नेतृत्व ही तो देवत्वका रूप धारण कर लेता है। राम तथा कृष्ण अपने व्यापक नेतृत्वके कारण ईश्वरके अवतार माने गये। इस तरह इस युगने महान् नेतृत्वके प्रति कृतज्ञता तथा श्रद्धा प्रदर्शनका एक नवीन मार्ग दिखलाया।

इस युगके आरम्भिक कालमें भारतको एक सांस्कृतिक सूत्रमें बांधनेकी चेष्टा की गयी। शिव-पार्वती विवाहके रूपमें हम इस दिशामें एक नवीन दृष्टिकोणकी उत्पत्ति पाते हैं। भिन्न-भिन्न समूहोंको वैवाहिक सूत्रमें एक दूसरेके साथ बांधनेसे स्वभावतः भिन्नताका लोप हो एकताकी सृष्टि हो सकती है।

इस दृष्टिकोणसे विचार करने पर शिव-पार्वती विवाहका महत्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है। शिव दक्षिणके नेता (देवता) थे। उत्तर भारतके देवताओंसे उनका रूप ही सर्वथा भिन्न है। गौर अथवा श्यामके बदले वे नील वर्णके हैं। उन दिनों उत्तर भारतमें सुन्दर पहिरावेका प्रचार हो चुका था। इसलिये यहांके

देवता भी आकर्षक रूपमें दिखलायी देते हैं। लेकिन दक्षिणके निवासी उस समय प्रायः अर्धनग्न ही थे। अतएव उनके देवता शिवको भी हम अर्द्धनग्न रूपमें ही पाते हैं। इधर पर्वत राजकी कुमारी पार्वती उत्तरकी कन्या थी। शिवकी ख्यातिसे प्रभावित होकर पार्वतीने उनसे विवाह करनेकी प्रतिज्ञा की। लेकिन उसके पिता कन्याके इस भावुकतापूर्ण निर्णयसे सहमत न हुए। अपनी कोमल और सुन्दर कन्याको वे शिव जैसे कुरूप, कंगाल तथा अर्द्धनग्नके हाथ सौंपना नहीं चाहते थे। लेकिन देशके सामूहिक स्वार्थको सामने रखकर उत्तरके देवता विष्णु आदिने इस विवाह की स्वकृति दे दी। फलस्वरूप पार्वतीकी इच्छा पूरी हुई।

इस प्रकार पृथक क्षेत्रों तथा समूहोंसे वैवाहिक बन्धनमें आबद्ध होकर संस्कृति प्रचारकी चेष्टा की गयी। अर्जुन जैसे प्रतिभाशाली पुरुषने भिन्न-भिन्न भागोंमें विवाहकर शक्तिशाली संतानों को उत्पत्ति की। आसाम प्रदेशकी चित्रांगदा तथा नाग राजकी कन्या आदिके विवाहसे यह दृष्टिकोण स्पष्टतः प्रतिपादित हो जाता है। देशकी सामूहिक आवश्यकताकी पूर्ति ही उस समयके लोगोंका प्रथम उद्देश्य दिखलायी देता है।

इस युगमें राजनीतिक विकास भी बहुत अधिक हुआ। वर्तमान कालके संयुक्तराष्ट्र-संघकी छाया हम राजसूय-यज्ञमें पाते हैं। आज संयुक्तराष्ट्र-संघके द्वारा प्रमुख राष्ट्रोंके बीच सहयोग स्थापित करनेकी चेष्टा हो रही है। राजसूय-यज्ञ करने वाले चक्रवर्ती राजाकी चेष्टा भी बहुत-कुछ इसी ढंगकी होती थी।

यज्ञका घोड़ा जब निर्विरोध नाना देशोंका भ्रमणकर वापस आता था, तब यज्ञका वास्तविक कार्य आरम्भ होता था। भ्रमण-कालमें यदि किसीने घोड़ेकी स्वच्छन्दतामें बाधा दी, तो उसके रक्षक उसे समझा-बुझाकर अपने पक्षमें लानेकी चेष्टा करते थे और प्रायः उनकी यह चेष्टा सफल हो जाती थी। क्योंकि राजसूय-यज्ञ करने वाला राजा भिन्न-भिन्न राजाओंके बीच सहयोग स्थापित करके सामूहिक कल्याणकी भावनासे ही इस यज्ञका अनुष्ठान करता था। किसी राजाकी मर्यादाको पददलित करना कदापि उसका उद्देश्य नहीं होता था, परन्तु यदि रक्षकगण किसी हठीको समझानेमें सफल नहीं होते थे, तो फिर युद्धके द्वारा वे घोड़ेकी मुक्ति प्राप्त करते थे।

इस तरह राजसूय-यज्ञ करने वाले राजाका नेतृत्व स्वीकार कर दूर-दूरके राजा, प्रजावृन्द, ज्ञानी, सन्त तथा देवतागण यज्ञमें सम्मिलित होते थे। यज्ञकी समाप्तिके अवसर पर चक्रवर्ती राजा उन्हें "यथायोग्य" दान देकर सन्तुष्ट करता था। इस "यथायोग्य" दानकी प्रणालीके अन्दर समाजवादका गूढ़-तत्व छिपा मालूम पड़ता है। चक्रवर्ती राजा भिन्न-भिन्न लोगोंकी आवश्यकताके अनुसार उन्हें दान देकर अवश्य ही यज्ञकी छायामें आनेवाले लोगोंके अभावकी पूर्ति कर समान समस्याकी भावनाकी सृष्टि करनेकी चेष्टा करता था। समाजवादका मूल आधार इस प्रकारकी चेष्टाके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता।

इस युगकी संगठन-शक्तिका अनुमान हमें साधुओंकी संस्था

द्वारा लग सकता है। राजा और प्रजा दोनों ही साधुओंसे लाभान्वित होते थे। साधु-समाज संगठित रूपमें देशकी सेवा करता था। इनकी कई श्रेणियाँ थीं, जैसे मुनी, तपस्वी तथा ऋषि आदि। मुनी उन्हें कहा जाता था, जो भिन्न-भिन्न स्थानोंमें घूमकर लोगोंकी सेवा करते थे, तपस्वी शारीरिक सुखोंको त्यागकर आध्यात्मिक प्रकाशकी प्राप्तिमें लगे रहते थे तथा ऋषि उन वैज्ञानिकोंका नाम था, जो व्यक्तिगत शक्तियोंका विकास कर चमत्कारपूर्ण शक्ति प्राप्त कर लेते थे। महर्षि विश्वामित्र नवीन सृष्टिके निर्माणकी चेष्टा करते हैं, अगस्त तथा दुर्वासा आदि ऋषि आलौकिक शक्ति रखते थे। नारद मुनी एक प्रबल तथा साधन-सम्पन्न गुप्तचरके रूपमें दिखलायी देते हैं। स्थान-स्थानकी अति गुप्त बातें वे योग्य स्थानोंमें प्रचारित करते थे। वशिष्ठ मुनी शिक्षाकी दिशामें महाआचार्यका काम करते हैं। इस तरह अनेक प्रमुख क्षेत्रोंमें साधु-समाजकी प्रगति दिखलायी देती है। देश पर संकट आनेकी अवस्थामें साधु-समाज गुप्तचर तथा पथ-प्रदर्शकका काम करता था। युगोंके बाद भी मुस्लिम युगमें संस्कृतिकी रक्षाके लिये साधुओंने अस्त्र उठाया। इन विस्तृत उपयोगिताओंके कारण ही हमारी भावनाके अन्दर इस समाजके प्रति स्वाभाविक श्रद्धा है, लेकिन वर्तमान समयके साधु अपनी इन उपयोगिताओंको भूल अपनी अवस्था हीन करनेके साथ-साथ हमारी श्रद्धापूर्ण भावनाओंमें ठेस लगाते हुए सहायकके बदले हमारे लिये एक बोझ प्रमाणित हो रहे हैं।

रामायण-महाभारत युगमें प्रजा अधिकार प्राप्तिकी ओर यथेष्ठ अग्रसर हो चुकी थी। जहाँ-तहाँ जनतन्त्रकी स्थापनाका भी उल्लेख मिलता है। इसे संघ कहा जाता था। राजाओंको मन्त्रि-मण्डलके द्वारा शासन चलाना पड़ता था। उत्तराधिकारी चुननेके समय प्रजाकी सम्मति ली जाती थी। महाभारतसे मालूम पड़ता है कि देवादिको कुष्ठ-रोग हो गया था, इस कारण जनताने उसे राजा बनने न दिया। उसे अपने पुत्रको राजा बनाना पड़ा। आवश्यकता पड़ने पर प्रजा स्वयं राजा चुनती थी। संवरणके पुत्र कुरुको गुणी होनेके कारण प्रजाने राजा बनाया।

कृषि-कार्य राजकीय संरक्षणमें होता था। सामूहिक कृषिका भी उल्लेख जहाँ-तहाँ मिलता है। प्रजाका सामूहिक अधिकार रहनेके कारण कोई भूमि वेच नहीं सकता था। इस कालमें कृषिके साथ-साथ पशु-विज्ञानका भी विकास हुआ। सहदेव पशुपालन-शास्त्रके पंडित थे। नकुलने अज्ञातवासके समय राजा विराटसे अपनेको अश्व विद्याका पण्डित बतलाया था। हस्ति-सूत्र आदि पशु-चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ महाभारत कालमें रचे गये।

वैज्ञानिक-विकास तो इस कालमें चोटी पर पहुँच चुका था। रामायण-महाभारत कालमें जैसे चमत्कारपूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका निर्माण हुआ, उस चमत्कार तक पहुँचनेके लिये वर्तमान युगके वैज्ञानिकोंको अभी बहुत लम्बा रास्ता तय करना पड़ेगा। इस कालमें जहाजोंका भी निर्माण होता था। विदुरने एक यन्त्रयुक्त

तथा सशस्त्र जहाज बनवाया था। इसके नष्ट हो जाने पर पाण्डवोंके बच जानेका उल्लेख है।

इस युगमें ही भगवान् कृष्णके द्वारा अमूल्य ग्रन्थ गीताकी सृष्टि हुई। यदि और किसी कारणसे नहीं, तो केवल गीताकी सृष्टिके कारण ही यह युग सदा आदरका स्थान पाता रहेगा। गीता मानव-ग्रन्थ है, मानवमात्रको इसके द्वारा प्रकाश मिलता है। इससे प्रकाश प्राप्त करनेके लिये किसी धर्म या मतविशेषके अनुयायी होनेकी आवश्यकता नहीं। किसी धर्म विशेषके प्रचारके उद्देश्यसे नहीं, वल्कि मानव मात्रकी स्वाभाविक समस्याओंका सरल समाधान प्रदान करनेकी भावनासे इसकी रचना हुई। इस कारण ही संसारमें इसका आदर है। संसारकी प्रायः सभी प्रतिष्ठित भाषाओंमें गीताका अनुवाद हो चुका है।

(८)

पौराणिक युग

इस युगका आरम्भ हम ईसा पूर्व ८०० वर्ष मान सकते हैं। रामायण-महाभारत कालमें बाहरी आडम्बरोंकी अधिकता हो गयी थी। इस कारण आध्यात्मिक चिन्तनमें शिथिलता स्वाभाविक थी। क्रियाके वाद उसकी प्रतिक्रिया अनिवार्य है। वैदिक-कालमें आध्यात्मिकताकी प्रमुखता थी, इस कारण उसकी प्रतिक्रियाके रूपमें हम रामायण-महाभारत कालमें भौतिकताकी

प्रमुखता पाते हैं। लेकिन इस भौतिकताके बाद प्रतिक्रियाके चक्रने फिर आध्यात्मिकताको प्रमुखता दी। इस कारण पौराणिक-युगमें हम आध्यात्मिकताकी भावनाकी वृद्धि पाते हैं। रामायण-महाभारत कालके भीषण और नाशकारी युद्धोंने लोगोंकी आंखोंका पर्दा खोल दिया था। सभी स्वार्थकी भावनासे ऊब चुके थे। अतएव लोगोंमें इतना साहस हो गया था कि वे अपने भावोंको निःसंकोच व्यक्त कर सकें। इस भावने कुछ लोगोंमें मानसिक-विद्रोह अथवा निर्भीकताकी भावना भर दी। पुराणोंकी मत-भिन्नता इसका स्पष्ट प्रमाण है। भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारोंने निर्भीकतासे प्रचलित विचारधाराका विरोध किया है। चार्वाकने इस युगमें ही ईश्वरका अस्तित्व अस्वीकार कर एक नवीन पंथ चलानेकी चेष्टा की। आत्मा और ब्रह्मके प्रश्न पर नाना पुराणोंमें महत्वपूर्ण विवेचन हैं। उन विवेचनोंके द्वारा यह बतलानेकी चेष्टा की गयी है कि मनुष्य किस तरह संसारके बन्धनोंसे छुट्टी पाकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

इस युगमें नाना धातुओंकी मुद्राओंका प्रचलन हुआ। ईसासे पूर्व सातवीं सदीमें पाणिनिने मुद्राओंका नाम पण, पाद और माप आदि बतलाया है।

राजाओंकी नैतिकतामें हम इस युगमें वृद्धि पाते हैं। प्रजाके बीच जागृतिकी वृद्धि होनेके कारण राजाओंकी सावधानी बढ़ गयी थी। मनुका कथन है कि राजा दूसरोंकी निन्दा नहीं करता, दिनमें नहीं सोता तथा विद्वानोंकी संगति करता है। शासन

सम्बन्धी व्यवस्था इस युगमें पूर्ण सुदृढ़ थी। राजा प्रजाको पुत्रके रूपमें देखता था।

इस युगमें जनताके अन्दर आत्मनिर्भरताके भावकी वृद्धि हुई। फलस्वरूप जनतन्त्रोंके विकास और वृद्धिका मार्ग खुल गया। इस भावनाके कारण ही आगे चलकर इस देशमें जनतन्त्रोंकी संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी।

(९)

जैन-बुद्ध युग

जैन-धर्मके प्रचारक महावीर तथा बौद्ध-धर्मके प्रचारक गौतम बुद्ध प्रायः समकालीन थे। ईसाके ६०० वर्ष पूर्व इन धर्मोंका प्रकाश संसारके सामने आया। आध्यात्मिक क्रान्तिकी भावना की सृष्टि हो चुकी थी। उपनिषदों तथा पुराणोंके द्वारा जिन लोगोंकी प्यास न बुझ सकी, वे ज्ञानकी खोजमें आगे बढ़े। महावीर और बुद्ध इनके ही नेता थे। इसमें सन्देह नहीं कि उपनिषदोंके आध्यात्मिकवादके आधार पर ही इन दोनों धर्मोंके मूल सिद्धान्तोंकी सृष्टि हुई। क्योंकि पुनर्जन्म, वर्णाश्रम तथा पाप-पुण्यके फलाफलका सिद्धान्त जैन और बौद्ध भी मानते हैं।

इस युगमें नाना प्रकारके मौलिक परिवर्तन हुए। देशमें पशु-बलिकी बहुत अधिक वृद्धि हो गयी थी। जैन तथा बौद्ध धर्मोंके द्वारा पशु-हिन्साके पूर्ण निषेधसे प्रकट होता है कि देशके बुद्धिपति इन क्रूरताओंसे पूर्णतः ऊब गये थे। क्रूरतापूर्ण कार्योंसे

स्वभावतः ही भावनाओंमें भी क्रूरताका प्रादुर्भाव होगा। अतएव देशकी भावनाको कोमल बनानेके उद्देश्यसे पशु-बलिका पूर्ण निषेध किया गया।

इस युगके आरम्भमें जाति-पाँतिकी समस्या भी प्रबल होती जा रही थी। इन दो नवीन धर्मोंने इसमें ढिलाई कर समाजके अन्दर तीव्रतापूर्ण भावनाओंको कम करनेकी चेष्टा की।

इस कालमें राजनीतिक क्षेत्रमें भी विशेष परिवर्तन दिखलाई पड़ा। पहले भिन्न-भिन्न भागोंमें अनेक छोटे-बड़े स्वतन्त्र राज्य थे। उनमें सबसे अधिक प्रतिभाशाली चक्रवर्ती राजा राजसूय यज्ञके द्वारा उनके बीच पारस्परिक सहयोग तथा समानताका भाव लानेको चेष्टा करता था। लेकिन प्रत्येक राजा की स्वतन्त्रता निर्विवाद रूपसे पूर्ण रहती थी। चक्रवर्ती राजा केवल नैतिक प्रभावका उपभोग कर उनका नेतृत्व करता था। लेकिन जैन-बौद्ध युगमें चक्रवर्ती राजाके बदले सम्राट राजनीतिक रंगमंच पर आये। बहुतसे राज्योंको अपने राज्यमें अस्त्रबलसे मिला कर सम्राट शक्तिके प्रतीक बन जाते थे। इस कालमें बिम्बिसार, अजातशत्रु, समुद्रगुप्त तथा स्कन्दगुप्त आदि कितने ही सम्राटोंने छोटे-छोटे राज्योंका प्रायः अन्त ही कर दिया।

इस युगमें हम एक और बड़ा परिवर्तन पाते हैं। पहले देश का शासन अलिखित विधानके द्वारा होता था। लेकिन इस कालमें उद्योग-धन्धों तथा व्यापारकी वृद्धिके साथ-साथ पार-स्परिक असहिष्णुताकी वृद्धि होनेके कारण राजनियमोंको लिपि-

वद्ध किया गया और इस तरह लिखित विधान देशके सामने आया। इस सम्बन्धमें कौटिल्यके अर्थशास्त्रका उल्लेख विशेष रूपसे किया जा सकता है। विधानोंके द्वारा जनताके जीवनको पूर्णतः नियंत्रित किया गया। उच्छृङ्खलताका दमन करनेके उद्देश्य से प्रत्येक दिशामें राजकीय नेतृत्वकी प्रणाली आरम्भ हुई। कौटिल्यने एक स्थल पर लिखा है "प्रजाके सारे कार्य पर शासन का नियंत्रण रहता है। कोई भी मनुष्य संसार त्याग कर अपनी इच्छासे संन्यासी भी नहीं हो सकता। संन्यासी होने की वैधानिक योग्यता पूर्ण किये बिना, जो संन्यासी होता है, दंडित किया जाता है।" कौटिल्यके अतिरिक्त इस कालमें कात्यायन तथा कालिदास जैसे अनेक मेधावी पुरुष उत्पन्न हुए।

गृह-उद्योगको भी इस कालमें यथेष्ट राजकीय प्रोत्साहन मिलता था। जन-साधारणको कच्चा माल प्राप्त करने तथा प्रस्तुत मालको बेचनेकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। इसका नियंत्रण शासनके द्वारा होता था। इस तरह पूर्ण सुविधा मिलनेके कारण गृह-उद्योगकी बहुत अधिक प्रगति हुई।

लेकिन सम्भवतः सबसे अधिक महत्वकी बात इस कालमें यह हुई कि धर्म प्रचारका संगठित उद्योग प्रथम बार आरम्भ हुआ। इसके पहले संसारमें धर्म प्रचारकी प्रणाली नहीं चली थी। अपनी प्रवृत्तिके अनुसार लोग स्वतः अपने जीवनको किसी न किसी सांचेमें ढाल लेते थे। इसके लिये उन्हें किसीके द्वारा विशेष रूपसे प्रभावित नहीं किया जाता था। लेकिन बौद्ध भिक्षुकोंका

सुसंगठित प्रचारक दल तैयार किया गया। उन्हें इस कार्यकी शिक्षा दी जाती थी और वे देश-विदेशमें धर्म-प्रचारके काममें ही अपना जीवन बिता देते थे।

धर्म-प्रचारकोंका संगठन जिस स्थानमें होता था, उसे मठ कहा जाने लगा। मठोंको अपने प्रचारकोंके लिये सब प्रकारकी व्यवस्था करनी पड़ती थी। अतएव स्वभावतः वहाँ धन एकत्र होने लगा। कुछ काल बीतने पर इन मठोंकी आर्थिक स्थिति अधिक मजबूत हो गई। इस तरह देशके विभिन्न भागोंमें साधन सम्पन्न मठाधीश दृष्टिगोचर होने लगे।

जैन तथा बौद्ध धर्मके प्रचारकोंके जीवनमें बहुत भिन्नता थी। जैन धर्मके नियम अत्यन्त कठोर हैं। उसके अनुयाइयों को बहुत अधिक नियंत्रित जीवन व्यतित करना पड़ता है। सम्भवतः इन कठोर नियमोंके कारण ही जैन धर्मका प्रचार इस देशके बाहर न हो सका। लेकिन बौद्ध-धर्मने अपने प्रचारकोंके लिये सुन्दर भोजन, वस्त्र तथा मठकी व्यवस्था की। इस धर्मको राजकीय छत्रछाया भी मिली। अशोक, कनिष्क तथा कई अन्य सम्राटोंने इसके प्रचारकी प्रबल चेष्टा की। इस कारण संसारके कई भागोंमें इसका पूर्ण प्रचार हुआ।

बौद्ध-धर्मके प्रचारमें प्रचारकोंके साथ-साथ बौद्ध-शिल्पियोंने भी यथेष्ट सहायता दी। मूर्ति-निर्माण कलाका स्तर इस युगमें बहुत ऊँचा उठा। अजन्ता तथा अन्य स्थानोंमें पाई जानेवाली कलापूर्ण मूर्तियां इस कथनको स्पष्टतः प्रमाणित करती हैं। साथ

ही विद्या-प्रचारकी व्यवस्था व्यापक रूपसे की गयी। बड़े-बड़े विश्वविद्यालयोंका निर्माण हुआ। उनमें नालन्दा विश्वविद्यालय सर्वप्रमुख था। यहाँ दस हजार विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। लगभग तीन हजार विद्यार्थियोंके लिये छात्रावासमें रहनेका प्रबन्ध था। विदेशोंसे भी यहाँ अनेक विद्वान विद्याध्ययनके लिये आते थे। इस तरह भारत अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावनाका केन्द्र हो गया था। यहाँसे निकले हुए कई विद्वानोंने चीन और तिब्बतमें बौद्ध-धर्मका प्रचार किया। यहाँ ही चीनी-यात्री यूएनच्वेंगने संस्कृतका अध्ययन किया। बादमें स्वदेश जाकर इसने चीनी-भाषामें बौद्ध-ग्रंथोंका अनुवाद किया।

जैन-बौद्ध कालमें ही बड़े-बड़े नगरोंका निर्माण हुआ। विशाल साम्राज्योंकी उत्पत्तिके कारण स्वभावतः ही वहाँकी राजधानियोंमें नाना प्रकारके विभागोंके लिये अधिक स्थानोंकी आवश्यकता हुई। साथ ही गृह-उद्योग तथा व्यवसाय भी बढ़ा। इस तरह राजनीतिक और व्यावसायिक आवश्यकताओंके सम्मिश्रणके फलस्वरूप नगरोंकी उत्पत्ति हुई। पाटलीपुत्र तथा नालन्दा आदि नगर इन आवश्यकताओंके ही प्रत्यक्ष उत्तर हैं।

विश्वव्यापी प्रचार होनेके कारण बौद्ध-धर्मको संसारकी अन्य विचारधाराओंको भी प्रभावित करनेका अवसर मिला। ईसाई-धर्म पर बौद्ध धर्मके गहरे प्रभावको अनेक विद्वानोंने स्वीकार किया है। युरोपके प्राचीन गिरजाघरोंकी बनावट बौद्ध मठोंसे बहुत-कुछ मिलती-जुलती है।

बौद्ध-धर्मके व्यापक प्रचारने जहाँ भारतीय-संस्कृतिको गौरवान्वित किया, वहाँ इसके फलस्वरूप हमें कुछ अंशोंमें क्षतिग्रस्त भी होना पड़ा। अहिंसाकी भावना देशमें हिंसाकी बढ़ती हुई ज्वालाको शान्त करनेके लिये प्रचारित की गयी थी। लेकिन इसकी मात्रा पर नियन्त्रण न रखा जा सका। अधिकता प्रत्येक वस्तुकी बुरी होती है। अहिंसा जैसा पवित्र पदार्थ भी इस नियमका अपवाद न बन सका। सम्भवतः आध्यात्मिक-भारतने अहिंसाके अमृत पर नियन्त्रण रखनेकी आवश्यकता महसूस नहीं की।

फलस्वरूप हमारी सैनिक शक्ति पहलेकी तरह सुदृढ़ न रह सकी। इस कालमें प्रथमबार विदेशियोंके संगठित आक्रमण आरम्भ हुए। इसके पहले भी दूसरे देशोंके लोग भारत आते थे। लेकिन सैनिक विजय प्राप्तिकी लालसासे नहीं, वल्कि शान्तिपूर्वक इस देशमें बसनेके उद्देश्यसे उनका आगमन होता था। पर इस कालमें विदेशियोंकी सुसंगठित सेनायें विजयकी लालसासे आने लगीं।

यूनानके सिकन्दरके वाद हूण, शक और कुषाण जातिके लोग इस देशमें आये। सीमाके भिन्न-भिन्न भागोंमें छोटी-बड़ी विजय प्राप्त कर वे वहाँ वसते गये। लेकिन समयके प्रवाहके साथ ये भारतीय संस्कृतिमें मिलते गये और कई सदियोंके वाद इनका कोई पृथक् अस्तित्व न रहा।

तक्षशिला तथा मथुरा आदिमें शक जातिका राज्य स्थापित हो गया। कुषाण जातिमें कनिष्क एक प्रतिभाशाली सम्राट हुआ।

बादमें इसने बौद्ध-धर्म स्वीकार कर दूर-दूरके देशोंमें इसके प्रचारकी पूरी चेष्टा की। इस तरह बाहरसे आये हुए लोग अपने पृथक् अस्तित्वको भूलकर पूर्णतः भारतीय हो गये।

(१०)

शंकराचार्य युग

बौद्ध-धर्मके प्रचारके कई सदियों बाद शंकराचार्य उत्पन्न हुए। वे एक प्रबल विद्वान तथा संगठनकर्त्ता थे। बौद्ध-धर्मके विकासके बाद इस देशमें कई प्रकारके सम्प्रदायोंकी उत्पत्ति हुई और ये भिन्न-भिन्न मत-मतान्तर एक-दूसरेके साथ विरोध-भाव रखने लगे। अतएव देशकी सांस्कृतिक एकताकी रक्षाके लिये इन परस्पर विरोधी मतोंको एक सूत्रमें बांधनेकी आवश्यकता स्पष्टता दिखलायी देने लगी। शंकराचार्यने अद्भुत योग्यता तथा शक्तिके साथ इस आवश्यकताकी पूर्ति की।

सर्वप्रथम उनका ध्यान इन सम्प्रदायोंके बीच पारस्परिक सद्भावनाकी उत्पत्तिकी ओर गया। एक दूरदर्शी कूटनीतिज्ञकी तरह उन्होंने किसी एक सम्प्रदायका समर्थन न कर सभी सम्प्रदायोंके बीच विलक्षण ढंगसे पारस्परिक श्रद्धाकी भावना भर दी। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके इष्टदेवताओंके बीच पारस्परिक श्रद्धाकी भावनाका प्रचार किया गया। शंकराचार्यने बतलाया कि विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये शिवकी उपासना आवश्यक है तथा ब्रह्माका

उपासक ही शिवको प्रसन्न कर सकता है, आदि। इस तरह लोगोंने समझा कि जब हमारे देवता ही एक-दूसरेको आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, तो फिर हम एक-दूसरेसे लड़ कैसे सकते हैं? इस विचारकी वृद्धिके साथ-साथ लोगोंमें पारस्परिक सहयोग तथा सद्भावनाकी मात्रा बढ़ी। फलस्वरूप वैष्णव, शैव और शाक्त प्रेम-सूत्रमें आबद्ध हो गये।

लेकिन इस सफलताको पूर्ण करनेके लिये बौद्धोंको भी इस समूहमें लाना आवश्यक था। वेदोंकी विराट छायाके नीचे ही भिन्न-भिन्न मतोंको एकत्रित किया जा रहा था, पर बौद्ध वेदोंकी सत्ता स्वीकार नहीं करते थे। अतएव शंकराचार्यने बौद्धोंको ब्राह्मण-धर्ममें लानेका क्रम आरम्भ किया। उस समय तक बौद्धोंकी प्रचार-शक्ति जीर्ण होनेके कारण शिथिल हो चुकी थी। इधर शंकराचार्य तथा उनके अनुयाइयोंने नयी लगनके साथ प्रचार आरम्भ किया। सफलताने उनके कदमोंको चूमा। इस तरह अन्य कई देशोंमें अपना प्रभाव जमाये रखते हुए भी बौद्ध-धर्म अपनी उत्पत्तिके स्थानसे प्रायः लुप्त हो गया।

इस सम्बन्धमें यह ध्यान देनेकी बात है कि बौद्ध-धर्मके लोप होनेके बाद भी जैन-धर्मका अस्तित्व ज्योंका त्यों बना रहा। इसका प्रधान कारण यह है कि बौद्धोंकी तरह जैनी धर्म-प्रचारके लिये कोई विशेष चेष्टा नहीं करते थे। साथ ही उनकी संख्या भी कम थी। उनके नियम इतने संयमित तथा कष्टसाध्य हैं कि उनके संयमपूर्ण जीवनसे किसी भी सम्प्रदायके साथ संघर्षकी सम्भावना

नहीं थी। अतएव उनकी ओर किसीने शंकाकी दृष्टिसे नहीं देखा।

शंकराचार्यने नवीन ढंगसे धार्मिक क्रान्ति प्रारम्भ की। धार्मिक-प्रचारकी प्रणाली बौद्धोंने सफलताके साथ प्रचलित की थी, शङ्कराचार्यने इसका पूर्णतः उपयोग किया। उनके प्रचारके फलस्वरूप इस देशसे धार्मिक-संघर्ष लोप हो गया। इस धार्मिक-जागरणको स्थायित्व प्रदान करनेके लिये उन्होंने समूचे देशमें मन्दिरोंका निर्माण कराया। मन्दिरोंमें स्थापित देवताओंकी भव्य मूर्त्तियोंने जनताके हृदयमें आदरका स्थान प्राप्त कर लिया। इसके पहले मूर्त्ति-पूजा अत्यन्त सीमित रूपमें थी। अतएव स्वभावतः मन्दिरोंकी अधिकता न थी। मूर्त्ति-पूजाका प्रबल प्रचार होनेके कारण जनसाधारणके बीच एक नयी धार्मिक-भावुकताकी सृष्टि हुई, जो कुछ अंशोंमें आज भी वर्त्तमान है।

मूर्त्ति-पूजाका स्थायित्व प्रदान करनेके लिये इस कालमें चारों धामोंके महत्त्वका पूर्ण प्रचार किया गया। इनमें तीन—जगन्नाथ, बद्रिकाश्रम तथा द्वारिका तो वैष्णव मतके आधार पर हैं, पर चतुर्थ—रामेश्वरम्में शिवकी उपासना होती है। यहाँ विष्णुके इष्टदेवके रूपमें शिवकी स्थापना है। दक्षिण स्थित धाम रामेश्वरम्में शिवकी उपासनासे भी यह प्रमाणित होता है कि शिव मुख्यतः दक्षिणके देवता हैं। इस सम्बन्धमें यह ध्यान देनेकी बात है कि बौद्ध जाति-पांति नहीं मानते थे। जगन्नाथ क्षेत्र बौद्धोंका केन्द्र था। अतएव वहांके मन्दिरमें जाति-पांतिका कोई भेद नहीं रखा

गया है। जाति-पाँतिका बन्धन तोड़कर वहाँ सब कोई एक साथ प्रसाद पाते हैं।

चारों धामोंकी प्रधानता स्थापित करनेके साथ ही साथ शङ्कराचार्यने देशके चारों भागोंमें चार पीठोंकी स्थापना की. जहाँ आज भी शङ्कराचार्यकी गद्दी मौजूद हैं और धार्मिकतापूर्ण तथा विद्वतापूर्ण ख्यातिको सुरक्षित रखनेके कारण आज भी देशमें इन चारों पीठोंमें शङ्कराचार्योंका यथेष्ट सम्मान है। महात्मा गांधीने जब असहयोग तथा खिलाफत आन्दोलन आरम्भ किया, तो शारदापीठके शङ्कराचार्यने उसमें प्रमुख भाग लेकर यथेष्ट सम्मान अर्जित किया था।

शङ्कराचार्यने गोत्रकी प्रणालीका भी जीर्णोद्धार किया। इस कालमें इसका पुनः संगठन हुआ। लोगोंने प्रायः स्वतन्त्रताके साथ अपनेको किसी-न-किसी गोत्रके साथ आबद्ध कर लिया। जिन लोगोंके गोत्र थे, वे ऊँची श्रेणीके तथा गोत्रविहीन नीची श्रेणीके समझे जाने लगे।

इस कालमें सगोत्र विवाहका निषेध पूर्ण दृढ़ताके साथ किया गया। यह निषेध मनोवैज्ञानिक आधार पर अवलम्बित है। गोत्रकी उत्पत्ति गोष्ठीसे हुई है। किसी एक गोष्ठी विशेपका आदमी अपनेको उस परिवारका सदस्य समझता है। इस प्रकार देशमें दर्जनों गोष्ठियां तथा परिवारसमूह हैं। यदि एक गोष्ठीके लोग उसी गोष्ठीके भीतर वैवाहिक सम्बन्ध करें, तो धीरे-धीरे अन्तर-गोष्ठी सम्बन्ध लोप होता जायगा और भिन्नताकी वृद्धिके कारण

स्वभावतः वैमनस्यकी उत्पत्ति हो सकती है। लेकिन यदि धार्मिक अथवा सामाजिक नियमके आधार पर किसी भी गोष्ठीके लोगोंको अपनी गोष्ठीके बाहर किसी अन्य गोष्ठीमें वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये बाध्य किया जाय, तो भिन्न-भिन्न गोष्ठियोंकी पारस्परिक सद्‌भावनाकी दिनोंदिन वृद्धि होती जाय और इस तरह वैमनस्यकी उत्पत्तिकी सम्भावना बहुत कम हो जायगी। सगोत्र विवाह निवारणका यही वास्तविक रहस्य है। एक गोत्रके व्यक्ति दूसरे गोत्रमें विवाह कर देशकी व्यापक सद्‌भावनाको सुरक्षित रख सकते हैं।

पहले तो एक गोत्रके लोग एक ही जगह रहते थे। लेकिन व्यावसायिक तथा जीविका सम्बन्धी अन्य सुविधाओंके कारण वे एक स्थानको छोड़कर दूसरे दूसरे स्थानोंमें बसते गये। इस तरह भिन्न-भिन्न गोत्रके लोग भिन्न-भिन्न स्थानोंमें एक साथ बस गये। ऐसी दशामें वैवाहिक सम्बन्धके लिये दूसरे गोत्रके लोगोंको प्राप्त करनेमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं रही।

शंकराचार्य की चेष्टाके फलस्वरूप भिन्न-भिन्न मतोंके सम्मिश्रणसे वैदिक धर्मने एक नवीन रूप धारण किया और इसे सनातन धर्मके नामसे पुकारा जाने लगा। बौद्धोंको वैष्णव मतके द्वारा आकर्षित किया गया। बौद्धोंकी प्रकृति पूर्णतः अहिन्सात्मक हो गयी थी। इस कारण वैष्णव मतकी अहिन्सापूर्ण भावनाओंको अपनानेमें उन्हें कोई कठिनाई न हुई।

इस तरह मतोंके एकत्रीकरणसे हिन्दू धर्मका विशालरूप दिख-

छायी देने लगा। लेकिन इस विशालताके साथ एक अप्रत्यक्ष संकीर्णता भी उत्पन्न हुई। लोग सजगतापूर्ण भावुकताके आवेशमें आकर धर्मके महलको चारो ओरसे घेर—"कोई घुसने न पावे" की भावनासे चौकसी करने लगे। वर्तमान धर्मोंके अतिरिक्त अन्य धर्म भी इस देशमें आवेंगे, सम्भवतः इसकी कल्पना नहीं की गयी थी। अतएव तत्कालीन धर्मोंके सम्मिश्रणको ही कार्य की समाप्ति समझी गयी। फल यह हुआ कि बादमें आनेवाले अन्य धर्मावलम्बियोंको हिन्दू धर्मके विशाल भ्रातृत्वमें मिलानेकी कोई चेष्टा न की गयी, बल्कि उनसे दूर रहनेका प्रयत्न किया गया। इस भावनाका विपाक्त फल देशको चखना पड़ा। शंकराचार्य युगके बाद इस देशमें पारसी, मुसलमान तथा ईसाई आये। यदि प्राचीन कालमें आनेवाले विदेशियों की तरह उनके लिये भी वैदिक धर्मका द्वार खुला रहता, जो सम्भव है कि भारतीय इतिहासका आज कोई दूसरा ही रूप होता।

धार्मिक सावधानीको बहुत अधिक महत्व देनेके कारण सामुद्रिक यात्राका भी निषेध कर दिया गया। फलस्वरूप हमारा विदेशी व्यापार नष्ट हो गया और किसी प्रकारका बाहरी सम्पर्क न रहनेके कारण हम कूप-मंडूप हो गये। आगे चलकर इस एकाकीपनके फलस्वरूप शिथिलताकी उत्पत्ति हुई, जिससे भारतीय इतिहासको बहुत अधिक प्रभावित होना पड़ा। इस तरह शंकराचार्यके धार्मिक प्रचारने जहां धार्मिक एकता की उत्पत्ति की, वहीं कई अन्य नवीन समस्याओंको भी खड़ा कर दिया, जिसका उचित समाधान यथासमय न निकाला जा सका।

मुस्लिम युग

आठवीं सदीके आरम्भसे भारतपर मुसलमानोंका आक्रमण शुरू हुआ। मुसलमानोंके पहले जितने भी आक्रमणकारी या शरणार्थी भारत आये, वे इस देशकी व्यापक संस्कृतिमें मिलते गये। सदी-दो सदी बाद उनका पृथक् अस्तित्व लोप हो जाता था और वे विशुद्ध भारतीय बन जाते थे। जिन विजेताओंने अपनी संस्कृतिका दबदबा भारतीय संस्कृतिपर लादना चाहा, उनकी संस्कृति भारतीय संस्कृतिके विशाल समुद्रमें मिलते ही लुप्त हो गयी।

परन्तु कई कारणोंसे मुसलमानोंके सम्बन्धमें ऐसा न हो सका। एक तो उन दिनों मुस्लिम धर्म बिलकुल नया रहनेके कारण चढ़ाव पर था। इस कारण वे धार्मिक जोशसे भरे थे। इधर भारतीय संस्कृति विचार-भिन्नताका घात-प्रतिघात सहते-सहते अपनी पाचनशक्ति क्षीण पर चुकी थी। साथ ही शंकराचार्यके समयमें धर्मोंका जो सम्मिश्रण हुआ, उसके फलस्वरूप अन्य विदेशी धर्मावलम्बियोंको हिन्दू धर्ममें मिलाये जानेकी कोई गुँजाइश नहीं रह गयी थी। अतएव एक ओर तो मुसलमान इस देशको अपने धर्मप्रचारके योग्य उपजाऊ क्षेत्र समझने लगे और दूसरी ओर धार्मिक भारत उन्हें शंकाकी दृष्टिसे देखते हुए पृथक् रहने की भावना दिखाता रहा। फलस्वरूप मानवी प्रवाह पर

इतिहासके प्रवाह की विजय हुई। इतिहासने अपना रास्ता पकड़ा। देशमें दो भिन्न-भिन्न धारायें प्रवाहित हुई।

भारत की ओर लालच भरी दृष्टि डालनेके बाद कई सदियों तक मुसलमान लुटेरेके रूपमें यहाँ आते थे। जहाँ-तहाँ छोटे मोटे राज्योंको परास्त कर उन्हें लूट वे अपने देश वापस चले जाते थे। लेकिन बाद में उनका ध्यान इस देशमें राज्य स्थापित करने की ओर गया और कई मुसलमान वंशोंने यहाँ राज्य किया। युरोपसे सम्बन्धित रहनेके कारण मुस्लिम आक्रमणकारियोंके पास आग्नेय अस्त्र थे, जिसका यहाँके राजाओंके पास सर्वथा अभाव था। अतएव श्रेष्ठ अस्त्रबलके द्वारा उन्हें विजय प्राप्त होने लगी।

बादमें जब पठान तथा लोदी आदि वंशोंके राज्य स्थापित हुए, तब भी मुसलमान आक्रमणकारियोंका आना जारी रहा। नवीन आक्रमणकारी हिन्दू राजाओंके साथ-साथ पहलेसे आए हुए मुसलमानोंके राज्य पर भी आक्रमण कर उन्हें अपने प्रभुत्वमें ले आते थे।

साधारणतः मुस्लिम युगको हम दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। प्रथम अकबरके पहले तथा द्वितीय अकबर और उसके बाद। वस्तुतः मुस्लिम साम्राज्य यहाँ अकबरके समयसे ही आरम्भ हुआ। उसके पहले मुस्लिम शासकोंका शासन शक्ति-सम्पन्नता, स्थायित्व तथा साम्राज्य विस्तार की दृष्टिसे किसी महत्वका न था। लेकिन अकबरने अपने साम्राज्यका पूर्ण विस्तार किया। साथ ही उसने हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच पारस्परिक सद्-

भावना वृद्धिकी चेष्टा की। लेकिन सम्भवतः उसने गलत दृष्टि-कोणसे काम लिया। राष्ट्रोन्नतिके आधारपर साम्राज्य स्थापित की चेष्टामें उसने इसे विशुद्ध राजनीतिक प्रश्न समझ लिया। इस कारण बड़े बड़े राजकीय पदोंपर हिन्दुओंकी नियुक्ति करके ही उसने इस उद्देश्यकी पूर्णता समझी। यदि धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे वह सद्भावनाकी वृद्धि करता, तो अपने प्रयासमें उसे सफलता मिल सकती थी। हिन्दुओंके धार्मिक भावोंके सम्मानकी उसने अवश्य ही चेष्टा की। लेकिन अपने व्यक्तित्वको वह इसमें मिला न सका। इस कारण संयुक्त तथा सुदृढ़ भारतका उसका स्वप्न पूरा न हो सका।

अकबरके उत्तराधिकारी धीरे-धीरे संकीर्ण होते गये और यह संकीर्णता औरंगजेबके समयमें पूर्णता प्राप्त कर गयी। फल यह हुआ कि मरहठा तथा सिखोंके रूपमें दो नवीन सैनिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। इन दोनों शक्तियोंने एक प्रकारसे मुगल साम्राज्यकी समाप्ति कर दी। लेकिन सुसंगठित अंग्रेज उस समय तक अपना पैर जमा चुके थे। कूटनीतिके बल उन्हें अपना सिक्का जमानेमें देर नहीं लगी।

धार्मिक कट्टरताके कारण मुसलमान न स्वयं लाभ उठा सके और न देशको ही कोई सामूहिक लाभ हुआ। फिर भी सांस्कृतिक रूपसे उनपर भारतीयता की छाप अवश्य पड़ी। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि भारतीय मुसलमानोंके रहन-सहन तथा खान-पानमें यहांके हिन्दुओंसे जितनी समानता है, उतनी समानता मुस्लिम देशोंके मुसलमानोंके साथ नहीं है।

साथ ही भारतीय संस्कृति पर भी मुसलमानोंका प्रभाव पड़ा। भारतमें पर्दा प्रथा स्पष्टतः मुस्लिम संस्कृति की देन है। मुसलमानोंके आगमनके पहले कहीं भी पर्देका उल्लेख नहीं मिलता है। भारतीय वेष-भूषापर भी मुस्लिम छाप स्पष्टतः दिखलायी देती है।

इस कालमें एक नवीन भाषाकी सृष्टि हुई, जिसे उत्तर तथा मध्यभारतने पूर्णतः अपनाया। इस भाषाको उर्दू या हिन्दी किसी भी नामसे पुकारा जा सकता है। लेकिन भाषा-विकासका सम्भवतः राजनीतिक महत्व समझा न जा सका। अन्यथा उर्दू और हिन्दीके बीच आज कोई भी भेद दिखलायी नहीं देता। अरबी तथा संस्कृतके भावुकतापूर्ण प्रभावसे निकाल कर इस भाषाको भारतीय भाषाके रूपमें ढाला जा सकता था। लेकिन इस प्रकारकी कोई चेष्टा नहीं हुई। यदि किसी-न-किसी रूपमें यह काम उस युगमें हो पाता, तो सम्भव है कि भारतकी भौगोलिक एकता नष्ट करनेका अंग्रेजोंको अवसर न मिलता और सम्मिलित भारत उन्नति-पथकी ओर अबाध गतिसे अग्रसर होता।

भारत पर मुस्लिम प्रभुत्व स्थापित होनेके बाद, यहाँ मुस्लिम-धर्मके प्रचारके लिये इस्लामी जुल्म भी बढ़ा। किसी भी समय समूचे भारत पर मुसलमानोंका आधिपत्य स्थापित न हो सका था। इस देशके कुछ भागों पर सदा ही हिन्दुओंका आधिपत्य रहा। कभी मुस्लिम साम्राज्यके क्षेत्रफलमें वृद्धि हो जाती थी और कभी कमी। मुसलमान इस देशकी संस्कृतिमें मिल न पाये, इस कारण दो विरोधी प्रवाहोंमें संघर्ष होता रहा। इन विरोधी

धाराओंने आगे चलकर धार्मिक-संघर्षका रूप धारण किया। इस संघर्षके बढ़ने पर कभी-कभी तो प्राचीन संस्कृति अत्याचारके बादलोंसे ढक-सी जाती थी और उसके अस्तित्व पर खतरा दिखलायी देने लगता था। संकट और परीक्षाकी इन घड़ियोंमें अद्भुत प्रतिभाशाली सन्तोंने जन्म लेकर हिन्दू-संस्कृतिकी पवित्र धाराको न केवल सूखनेसे ही बचाया, बल्कि उसमें नवीन लहर तथा निनादकी सृष्टि की। इनकी हुँकार तथा प्रेमवाणीने लोगोंमें नवीन जीवन, नवीन उत्साह तथा नवीन विश्वासकी भावना भरी।

इन भक्तों तथा सन्तोंकी श्रेणियोंमें कबीर, रामानन्द, सूर, तुलसी, चैतन्य, नरसिंह मेहता, मीराबाई, तुकाराम, रामदास, सन्त ज्ञानेश्वर तथा गुरु गोविन्द सिंह आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। समय-समय पर कतिपय धार्मिक नेताओंने अस्त्रका भी उपयोग कर अपनी संस्कृतिकी रक्षा की। सिख सम्प्रदाय इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। पश्चिमसे आये हुए लम्बे-चौड़े मुसलमानोंकी तुलनामें यहाँके निवासी हीनताका अनुभव न करने लगें, इस कारण सिख सम्प्रदायमें केश बढ़ाने तथा सदा कृपाण धारण करनेकी व्यवस्था की गयी। कई विशेष नियमोंका प्रयोग कर सिख गुरुओंने लोगोंमें सैनिक भावना भरनेकी चेष्टा की।

इन सन्तोंने प्राचीन साहित्यकी रक्षाका भी पूरा उद्योग किया। मुसलमानी प्रभुत्वके कारण संस्कृतके पठन-पाठनकी प्रणाली कम

हो रही थी। संस्कृतके ज्ञानके अभावमें लोग धार्मिक आलोकसे पृथक हो सकते थे। इस संकटपूर्ण सम्भावनाको देखकर नाना सन्तोंने लोगोंकी वोलचालकी भापामें धार्मिक-ग्रन्थोंका निर्माण किया। तुलसीकृत रामायण इस स्तुत्य प्रयत्नका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस तरह सन्तोंने घनान्धकारमें भी जनताके अन्दर किसी-न-किसी प्रकार धार्मिक अग्निको प्रज्वलित रखा।

(१२)

युरोपियन संसर्ग-युग

भारतीय समृद्धिकी ख्यातिके फलस्वरूप इस देशका वैभवशाली चित्र संसारके सामने था। अतएव भिन्न-भिन्न देशोंकी लोलुप-दृष्टि इस देशकी ओर पड़नेमें विलम्ब न लगता था। जव यूरोपका औद्योगीकरण आरम्भ हुआ, तो अपना माल वेचनेके लिये वहाँके देशोंने संसारके चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। भारतकी खोज सबको थी, लेकिन सर्वप्रथम पुर्तगालियोंको इस देशमें प्रवेश करनेमें सफलता मिली। व्यापारीके रूपमें वे भारतके दक्षिण पश्चिमीय भागमें अपना विस्तार करने लगे। पुर्तगालियोंके आगमनके कुछ वर्षों वाद फ्रान्सीसी इस देशमें आये। व्यापारिक प्रधानता स्थापित करनेकी चेष्टामें स्वभावतः पुर्तगालियोंसे उनका संघर्ष हुआ। फ्रान्सीसी अपने युरोपियन प्रतिद्वन्द्वीकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली तथा कूटनीतिज्ञ थे। अतएव उन्होंने अपनी प्रधानता स्थापित कर ली।

लेकिन कुछ दिनोंके बाद परम कूटनीतिज्ञ अंग्रेज भी इस क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए। विशेषकर फ्रान्सीसियोंके साथ इनका संघर्ष प्रारम्भ हुआ। आरम्भिक दिनोंमें अंग्रेजों पर फ्रेञ्चोंकी ही विजय होती रही और ऐसा मालूम पड़ने लगा, जैसे इस देशमें इनकी ही प्रधानता स्थापित हो जायगी, लेकिन अंग्रेजोंने कूटनीतिसे काम लिया। उन दिनों इस देशकी खबरें यूरोप तक पहुँचनेमें महीनों लग जाते थे। इसलिये फ्रान्सीसियोंकी विजयोंका वास्तविक महत्त्व प्रकट होनेके पहले ही इङ्गलैण्डने फ्रान्स और पुर्तगालसे ऐसी सन्धियाँ करलीं, जिससे भारतमें पराजित अंग्रेजोंको किसी प्रकार क्षतिग्रस्त नहीं होना पड़ा। एक बार पैर जमानेका अवसर मिलने पर अंग्रेजोंने अपनी कूटनीतिके द्वारा एकको दूसरेसे लड़ा, अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

भारतमें अंग्रेजी शासनकी स्मृति इस समय भी लोगोंकी आँखोंके सामने ताजी है। लगभग डेढ़ सौ सालके आधिपत्यमें अंग्रेजोंने इस देश पर युरोपीयन-जीवनका रंग चढ़ानेकी चेष्टा बड़ी बुद्धिमानीसे की। अपने प्रभुत्वके कालमें मुसलमानोंने तलवार और शासन-सम्बन्धी अत्याचारके बल पर इस देश पर अपनी धार्मिक भावना लादनेकी अदूरदर्शितापूर्ण चेष्टा की थी। इसके फलस्वरूप उन्हें अपने प्रभुत्वसे हाथ धोना पड़ा। लेकिन अंग्रेजोंने इस सम्बन्धमें दूरदर्शितासे काम लिया। उन्होंने शक्तिका उपयोग करनेके बदले अपने सुखमय जीवनका प्रदर्शन कर लोगोंमें उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न करनेकी चेष्टा की। इसके फलस्वरूप

शिक्षित समुदाय पर अवश्य ही कुछ-न-कुछ इसका प्रभाव पड़ा और किसीने इसका विशेष विरोध करनेकी आवश्यकता नहीं समझी।

कूटनीतिक रूपमें अंग्रेजोंने यहांके लोगोंको इस प्रकार प्रभावित कर लिया था कि यदि मुसलमानोंकी तरह वे यहां बस जाते और यहांके अंग्रेज इङ्गलैण्डसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध विच्छेद कर यहांके निवासीकी हैसियतसे देशकी उन्नतिकी चेष्टा करते, तो अभी बहुत अधिक दिनों तक इस देशके शासन पर उनका प्रभुत्व रहना सर्वथा सम्भव था। परन्तु स्वदेश-प्रेमके कारण वे ऐसा न कर सके और इसके मूल्यके रूपमें उन्हें भारतसे अपना सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा।

अंग्रेजोंने इस देशको सदैव विदेश ही समझा। इस कारण उन्होंने इस देशकी उन्नति उसी सीमा तक की, जहां तक आवश्यकताने उन्हें बाध्य किया। उनके द्वारा प्रचलित शिक्षा-पद्धति आज भी ज्यों-की-त्यों वर्तमान है। इसके द्वारा शासन-सम्बन्धी आवश्यकताओंकी पूर्तिके सिवा देशका कोई सामूहिक लाभ नहीं हो सकता है।

इस देशमें अंग्रेजोंने कई अच्छे काम भी किये। कुछ भारतीयोंको उन्होंने उच्च सरकारी पद देकर, उन्हें शासन-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करा दिया। स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद इन भारतीय अफसरोंसे वर्तमान सरकारको शासन चलानेमें बड़ी सहायता मिल रही है।

भारत पर अंग्रेजी प्रभुत्व स्थापित होनेके साथ ही युरोपको संस्कृतके अक्षय ज्ञानका महत्व समझनेमें विलम्ब न लगा। कई युरोपीयन विद्वानोंने संस्कृत-साहित्यके प्राचीन ग्रन्थोंके अन्वेषणमें अपना जीवन बिता दिया और इसके सहारे वे बहुत-कुछ सीख लाभान्वित हो सके। इस दिशामें जर्मन विद्वानोंकी प्रमुखता रही।

लार्ड कर्जनने एक कानून बनाकर इस देशके ऐतिहासिक महत्वकी चीजोंकी रक्षाका प्रबन्ध किया। इसके आधार पर प्राचीन इमारतों, मूर्तियों तथा शिलालेखोंकी रक्षा सरकार द्वारा की जाती थी।

औद्योगिक क्षेत्रमें अंग्रेजोंने विशेषतः पाट तथा कपड़ेके उद्योग का प्रसार किया। १६१२ ई० में टाटा कम्पनीकी स्थापनाके द्वारा इस देशमें लोहेके व्यवसायकी प्रमुखता उत्पन्न हुई। १८१४ ई० में जब प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ, तो अंग्रेजोंने इस देशमें लोहेके व्यवसायकी वृद्धिकी आवश्यकता महसूस की। साधारण अस्त्र-शस्त्रोंका भी निर्माण यहाँ आरम्भ हुआ।

यद्यपि कूटनीतिज्ञ अंग्रेजोंने अठारहवीं सदीके आरम्भ तक भारतके अधिकांश भागों पर आधिपत्य जमा लिया था; फिर भी उनके विरुद्ध यहांके निवासियोंके अन्दर आग सुलग रही थी और १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके रूपमें भारतके प्रथम स्वातंत्र्य-संग्रामका श्रीगणेश हुआ। इस अवसर पर अंग्रेजोंने अपने दृष्टिकोणमें परिवर्तन किया। शान्ति स्थापित होने पर ईस्ट इण्डिया

कम्पनीके हाथसे भारतका शासन निकालकर ब्रिटिश गवर्मेन्टने अपने हाथमें ले लिया। तत्कालीन सम्राज्ञी विक्टोरियाने भारतीय भावनाको शान्त करनेके लिये एक महत्त्वपूर्ण घोषणा की, जिसके द्वारा इसका आश्वासन दिया गया कि किसीकी भी धार्मिक भावनाओं तथा कृत्योंमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। धार्मिकताके रंगमें रंगे हुए भारतको इस घोषणाने पूर्ण शान्त कर दिया और उसके लगभग आधी सदी बाद तक अंग्रेजोंको पूर्ण शान्तिके साथ शासन करनेका अवसर मिला। परन्तु १९०५ ई० में जब लार्ड कर्जनने बंग-भंगकी घोषणा की तो फिर भारतका राजनीतिक तापमान चढ़ा और उस समयसे लेकर अंग्रेजोंकी विदाई तक किसी न किसी रूपमें राजनीतिक आन्दोलन चलता ही रहा।

प्रथम महायुद्धकी समाप्तिके बाद, जब लाखों जवान स्वदेश लौटे, तो उनके साथ-साथ स्वतन्त्र देशोंके सुखोंका जीता-जागता चित्र भी आया। स्वतन्त्रताका वास्तविक रूप देखनेपर परतन्त्रता के कारण अपनी हीनताका अनुभव लोगोंको होने लगा। इस भावनाने राजनीतिक आन्दोलनकी गति और भी तीव्र कर दी। यद्यपि अंग्रेजोंने 'मान्टेगु चेम्सफोर्ड रिफार्म' के रूपमें स्वल्प अधिकारोंकी मिठाई चटानेकी चेष्टा की ; पर राजनीतिक दृष्टिसे भारत प्रौढ़ता प्राप्त कर चुका था ; अतएव उसे वास्तविक अधिकारोंसे दूर रखना कठिन हो गया।

भारतके राजनीतिक आन्दोलनके औचित्यके कारण

अन्य देशोंमें अंग्रेजोंके सम्मानमें कमी न आये, इसके लिये उन्होंने विदेशोंमें भारतके विरुद्ध प्रबल प्रचार आरम्भ किया। विदेशोंको कौन कहे, इङ्गलैण्डकी भी आम जनताको भारतकी वास्तविकतासे अनभिज्ञ रखा गया। अंग्रेजोंके प्रचारसे प्रभावित होकर संसारके अधिकांश लोग तो यही समझते थे कि भारतमें दीनताके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रचारके द्वारा अंग्रेज भारत पर अपने शासनको न्यायोचित बतलानेकी चेष्टा करते रहे। इनकी कार्य-प्रणाली वस्तुतः विलक्षण ही थी।

अंग्रेजी शासन कालमें ईसाई धर्मको राजकीय छत्र-छाया प्राप्त थी। ईसाई प्रचारकोंने समूचे देशमें गिरजाघरोंका जाल बिछा दिया। देशकी ग़रीबी और अशिक्षाको पृष्ठभूमि बनाकर हमारी संस्कृति पर प्रहार आरम्भ हुआ। संकटके इस अवसर पर भारतीय संस्कृतिके नये-नये पहरेदार उत्पन्न हो गये। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, रामकृष्ण-परमहंस, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा स्वामी विवेकानन्द इन पहरेदारोंमें विशेष उल्लेखनीय हैं। भारतके तेजस्वी महात्माओं तथा विद्वानोंने एक बार फिर भारतीय संस्कृतिकी रक्षा कर ली।

युरोपियन संसर्गके फलस्वरूप पुनः समूचे संसारसे हमारा सम्बन्ध स्थापित हो गया। शंकराचार्यके समयमें समुद्र-यात्राके विरुद्ध जो प्रतिबन्ध लगाया गया था, वह धीरे-धीरे इस कालमें टूट गया। प्रारम्भिक दिनोंमें तो समुद्र यात्रा करनेवालोंको

भीषण सामाजिक संघर्षका सामना करना पड़ता था। परन्तु समयके प्रवाहको कोई रोक न सका और समुद्रयात्राके विरुद्ध बादमें किसी प्रकारका विरोध या प्रतिबन्ध न रह सका।

(१३)

गांधी युग

विदेशी शासनका कड़ुआ फल भारतको प्रथम बार अंग्रेजी आधिपत्यके दिनोंमें चखना पड़ा। अंग्रेजोंके पहले आनेवाले सभी विदेशी समयके गतिके अनुसार भारतीय बनते गये। परन्तु अंग्रेज सम्भवतः रंग भेदके कारण ऐसा न कर सके। १८५७ ई० का प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम असफल हो चुका था। इस असफलता के बाद देशमें शान्ति और शायद मुर्देकी शान्ति स्थापित हो गयी।

१९०५ ई० में बंग-भंगका आन्दोलन आरम्भ होने पर समूचे देशमें राजनीतिक लहर उठने लगी। इस आन्दोलनके साथ ही क्रान्तिकारियोंके दल संगठित होने लगे। देशके सैकड़ों नवयुवक स्वतन्त्रताकी वेदी पर अपना शरीर होम करने लगे। चरम सीमा के बलिदानका आदर्श उन्होंने उपस्थित किया। लेकिन खून-खराबीकी यह भावना हमारी संस्कृतिके प्रतिकूल है। अतएव देशका सामूहिक समर्थन क्रान्तिकारियोंको न मिल सका। साथ ही हम निःशस्त्र थे और इस दशामें ही हमें संसारके सबसे अधिक शक्तिशाली साम्राज्यकी शक्तिसे लोहा लेना था।

अतएव यह स्पष्ट था कि देशमें कोई ऐसा आन्दोलन चलाया जाय, जिसमें जनता सामूहिक रूपसे भाग ले सके। साथ ही यह भी आवश्यक था कि वह आन्दोलन हमारी संस्कृतिकी भावनाके अनुकूल हो। जनताका सामुहिक समर्थन प्राप्त करनेका इसके सिवा कोई दूसरा मार्ग न था।

इस निश्चित आवश्यकताकी पूर्तिके लिये गांधीकी उत्पत्ति हुई। उन्होंने आत्म-संयम, आत्मबल तथा सत्यके आधार पर एक नवीन विचारधाराका चमत्कार संसारको दिखलाया। भारतीय जनता झूम उठी उनके हुंकार पर। भौतिकताके झूले पर झुलने-वाले अंग्रेज भौचक्के हो गये। प्रचुर अस्त्र-बलके स्वामी होते हुए भी उन्हें अपनी शक्तिहीनता स्पष्टतः दिखलायी देने लगी। राज-नीतिक समस्याको गांधीजीने नैतिकताका जामा पहना दिया। अधिकांश लोगोंकी धारणा है कि गांधीकी सफलता एक राजनीतिक सफलता थी और गांधीके प्रयोग भी राजनीतिक तत्त्वोंसे परिपूर्ण थे। लेकिन ऐसा समझना गांधीके वास्तविक महत्त्वको नहीं समझनेके बराबर है। महात्मा गांधी अपने किसी भी आन्दोलन अथवा कार्यमें नैतिकताको सबसे अधिक महत्व देते थे। भारतीय संस्कृतिके पास सदासे नैतिकताका अक्षय भंडार रहा है। अतएव राजनीतिक विषयोंमें भी नैतिकताको प्रधानता देकर भारतीय जनताको अपना अन्ध-भक्त बनानेमें गांधीको कोई कठिनाई नहीं हुई। गांधीवादकी विजय गांधीकी व्यक्तिगत विजय नहीं, बल्कि भारतीय-संस्कृतिकी विजय थी। साथ ही उनके सिद्धान्तोंमें भी

राजनीतिकताके बदले आध्यात्मिकता तथा नैतिकताका ही अधिक प्रभाव है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि महात्मा गांधीकी परम प्रिय राजनीतिक संस्था भारतीय कांग्रेस यदि इस देशमें महत्व खो बैठे, तब भी गांधीके सिद्धान्तोंका जनता पर प्रभाव और सम्मान ज्यों-का-त्यों बना रहेगा। गत पांच वर्षोंमें जतनाकी दृष्टिमें कांग्रेसकी प्रतिष्ठामें काफी कमी हो चुकी है। लेकिन इसके फलस्वरूप गांधीजी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों तथा भावनाओंकी प्रतिष्ठाकी देशमें कोई भी कमी नहीं हुई। एक युग-प्रवर्तकके महत्वकी वास्तविक कसौटी यही है। महात्मा गाँधी एक युग-पुरुष थे। उनकी विचारधारा सत्यकी पृष्ठभूमि पर आश्रित है। सत्यकी प्रतिष्ठा किसी भी युग या अवस्थामें नहीं घटती। वर्तमान समयमें गांधीवादके नामसे पुकारी जानेवाली विचारधारा सदा अटल रूपसे संसारको प्रभावित करती रहेगी। संसारके भिन्न-भिन्न देशोंमें इसके सम्मानकी वृद्धि हो रही है। गांधीवाद संसारको भारतीय-संस्कृतिकी नवीन और गौरवपूर्ण भेंट है।

प्रथम महायुद्धके बाद भारतमें निराशाकी एक भीपण लहर आई। राजनीतिक गगनमण्डल प्रकाशहीन हो रहा था। उस प्रकाशहीनताको जेनरल डायरकी ज्वालापूर्ण गोलियोंने १९१८ में अमृतसरके जलियानवाले वागमें भंग किया। देशमें चेतनाकी विजली दौड़ गयी। परतन्त्रताका अति नग्नरूप जो सामने आ गया था।

गांधीजीने इस स्वर्ण अवसरका उपयोग किया। अपनी

नवीन युद्ध-प्रणाली उन्होंने संसारके सामने रखी। उन्होंने लोगोंको अन्याय और अत्याचारका सामना प्रतिहिंसाकी भावनासे नहीं, बल्कि आत्मबलके गौरवपूर्ण अस्त्रसे करनेके लिये प्रेरित किया। महात्मा गांधीने अंग्रेजोंके विरुद्ध नहीं, बल्कि अङ्गरेजी-शासनके विरुद्ध संग्राम आरम्भ किया। इसका अर्थ यह हुआ कि उनकी कार्यप्रणालीके अनुसार अंग्रेजोंके प्रति देशमें व्यक्तिगत रूपसे किसी प्रकारकी दुर्भावना उत्पन्न न कर, केवल उनकी शासन-प्रणालीके विरुद्ध लोगोंको शान्तिपूर्ण युद्ध छेड़नेके लिये आमन्त्रित किया गया।

देशकी राजनीतिक सजगतासे व्यापारी-समाज भी यथेष्ट रूपमें प्रभावित हुआ। नाना प्रकारके उद्योग-धन्धोंका देशमें विस्तार हुआ। औद्योगिक सफलताने हमारी योग्यता स्पष्टतः प्रमाणित कर दी। इस सफलताके बाद अंग्रेजोंको यह कहनेका मुँह नहीं रहा कि भारतीयोंमें कार्य-संचालनकी योग्यता नहीं है।

गांधी-युगमें जनताने अपने वास्तविक रूपको पहचाना। लोग भारतीयतामें गौरव अनुभव करने लगे। व्यक्तिगत-जीवनकी मजबूरियोंके कारण जो प्रत्यक्ष रूपसे गांधीका साथ न दे सके, उनके हृदय पर भी गांधीवादकी गहरी छाप पड़ गयी थी। लोग निर्विवाद रूपसे गांधीकी ध्वनिको अपनी ध्वनि समझने लगे।

युद्धकी गति कभी तीव्र होती है और कभी मन्द। विजयका सेहरा कभी एक पक्षके सिर बँधता है, तो कभी दूसरे पक्षके। इस स्वाभाविक नियमके अनुसार गांधीके नेतृत्वमें स्वाधीनता-

संग्राम चलता रहा। इसी बीचमें द्वितीय महायुद्धका श्रीगणेश हुआ। गांधीके नेतृत्वमें राजनीतिक भारतने युद्धमें अंग्रेजोंका साथ देना अस्वीकार कर दिया। नेताजी बोस अपने तूफानी कार्यक्रमके साथ नाटकीय ढंगसे जर्मनी पहुँच गये। वहां संगठन कार्य करनेके बाद वे जापान जा पहुंचे और आज़ाद हिन्द सेनाका संगठन कर अस्त्रबलसे मातृभूमिको स्वतन्त्र करनेका साहसपूर्ण तथा गौरवपूर्ण प्रयत्न किया।

द्वितीय विश्वयुद्धकी समाप्तिके बाद अंग्रेजोंके अस्त्रबलको गांधीके आत्मबलके सामने झुकना पड़ा। फिर भी अंग्रेज अंग्रेज ही थे। अनोखी कूटनीतिका सहारा लेकर उन्होंने भारतका विभाजन कर दिया। इससे गांधीके हृदय पर गहरा आघात लगा। गांधीके नामसे पुकारा जानेवाला रक्त-मांसका वह पुतला विभाजन अथवा स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद कोई वास्तविक कार्य न कर सका।

लेकिन और कुछ करना शेष भी नहीं रह गया था। उन्होंने जवाहरलालके रूपमें देशको अपना वास्तविक प्रतिरूप अर्पित कर दिया था। देशकी बागडोरका संचालन उनके प्रिय शिष्य और उत्तराधिकारीके द्वारा हो रहा था। उनकी शक्तिमें गांधीका विश्वास था, इस विश्वासमें सन्तोषकी भावना थी और इस भावनाके अन्दर कर्त्तव्य पूर्तिका सुख था।

गांधीको और किस चीजकी प्रतीक्षा हो सकती थी? फिर भी उन्हें परम शान्ति प्राप्त करनेके लिये ३० जनवरी १९४८ ई० तक गोडसेकी गोलीकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। गोडसेने दिल्ली

आकर प्रार्थनाके अवसर पर इस युग-पुरुषकी दैहिक लीला समाप्त कर दी। इस राजनीतिक हत्याकाण्डका विवेचन भावी इतिहास-कारोंका काम है।

महापुरुषोंका अन्त प्रायः इसी रूपमें होता है। ईसाके बलिदानके बाद सम्भवतः यह सबसे अधिक मूल्यवान बलिदान था। गांधीका शरीर पंचतत्त्वमें मिल गया। लेकिन उनके द्वारा प्रचारित विचारधारा घनान्धकारके अवसरमें सदा संसारके सामने आशाका प्रकाश प्रदान करती रहेगी।

(१४)

वर्त्तमान युग

महात्मा गांधीके बाद भारतमें अन्धकार छा जानेकी सम्भावना कुछ क्षेत्रोंमें प्रकट की जाती थी, लेकिन प्राकृतिक नियमके अनुसार आवश्यकताकी पूर्ति स्वतः किसी-न-किसी रूपमें हो ही जाती है। इस महापुरुषकी विदाईके बाद भी ऐसा ही हुआ। पं० जवाहरलालजी नेहरूने गांधीकी धरोहरको पूरी सच्चाईके साथ सम्हाला। पं० नेहरूने कलकत्तेके समीप बैरकपुरमें गांधीकी स्मृतिमें निर्मित गांधीघाटका उद्‌घाटन करते हुए शोकमय भावुकताके साथ कहा था—"कभी-कभी गांधीजीकी आत्मा पूछती है कि सच्चाईके साथ अपना फर्ज तो अदा कर रहे हो? ऐसे मौके पर उनकी आत्माको जवाब देनेके लिये पूरी गम्भीरताके साथ सोचना पड़ता है।"

नेहरूके इन शब्दोंसे ही स्पष्टतः प्रकट होता है कि किस तत्परता तथा ईमानदारीके साथ वे अपने राजनीतिक पिता द्वारा सौंपे गये उत्तरदायित्वको सम्हाल रहे हैं। यदि उनकी तरह अन्य कांग्रेसके नेता भी इस उत्तरदायित्वको समझते, तो देशका चित्र ही आज दूसरा होता। जिन लोगोंमें इस प्रकारकी चेतना कुछ मात्रामें मौजूद है, उनमेंसे अधिकांश दलबन्दीके झमेलेसे ऊबकर कांग्रेससे अलग हो गये। इस तरह उनकी उपयोगिताका क्षेत्र संकीर्ण हो गया।

आज भारतमें संसारके अन्य देशोंकी तरह नाना प्रकारकी विचारधारायें संघर्ष कर रही हैं। प्रधानतः पूँजी और श्रमका द्वन्द्व दिखलायी देता है। साथ ही विभाजनके कारण और भी अनेक समस्यायें हमारे सामने हैं और उनके फलस्वरूप भी मतभेदकी वृद्धि हो गयी है। इसमें सन्देह नहीं कि यह समूचे संसारके लिये संघर्षका समय है, लेकिन इस कालमें ही नवीन भारतको अपनी समस्याओंका दृढ़तापूर्ण समाधान निकालना होगा। नाना प्रकारके द्वन्द्वोंका सम्मिश्रण कर भारतीय संस्कृति सदासे कल्याणका मार्ग निकालती आई है। आज भी हममें वह शक्ति वर्त्तमान है। १९५२ ई० में शान्तिनिकेतनमें भाषण देते हुए डा० राधाकृष्णन्ने कहा था—"Western tradition says—this or the other ; but it is Indian tradition to say that both together." (पश्चिमीय संस्कार कहता है कि दोमेंसे एकको चुन लो, लेकिन भारतीय

संस्कारका कथन है कि दोनोंको एक साथ क्यों नहीं अपनाया जाय ?)।

भारतीय दार्शनिकके उपरोक्त कथनसे वर्तमान समस्याओंके सद्भावनापूर्ण समाधानका स्पष्ट संकेत मिलता है। प्रत्येक विचार-धाराकी अच्छाइयोंका सम्मिश्रण कर एक नवीन गौरवपूर्ण चित्र अंकित करनेका अभ्यास भारतीय संस्कृतिको आरम्भ कालसे ही है और आज भी हम ऐसा कर सकते हैं। इस चेष्टाको सफल बनानेके लिये हमें प्रत्येक प्रकारके विदेशी प्रभावको दूर फेंकना होगा। आपसमें संघर्ष करनेवाली विदेशी विचारधारायें हमें लाभान्वित नहीं कर सकती हैं। अपनी सुप्त-शक्तियोंको जाग्रत कर हम अपनी प्रकृति तथा संस्कृतिके अनुकूल प्रत्येक समस्याका समाधान निकाल सकते हैं, लेकिन उत्तेजनापूर्ण वायुमण्डलमें किसी भी प्रकारकी सफलता हमें नहीं मिल सकती। किसी भी युगमें उत्तेजनाका हमारे जीवनमें कोई स्थान नहीं रहा है। शान्तिमय चिन्तनसे ही भारतको सदैव प्रकाश मिला है और आज भी मिलेगा। यदि अपनी शक्तियोंका उपयोग कर हम डा० राधाकृष्णनके संकेतके अनुसार कोई सर्वमान्य मार्ग निकाल सकें, तो मानवमात्रका इससे कल्याण हो सकता है।

(१५)

भारतीय संस्कृतिका मूल आधार 'सत्य' है, जिसके सम्बन्धमें किसी भी युगमें कोई विवाद नहीं उठ सका। ईश्वरके अस्तित्वको विवादरहित नहीं माना जाता। उसके रूपके सम्बन्धमें

भिन्न-भिन्न धर्मोंमें नाना प्रकारके विवाद हैं, लेकिन सत्यका महत्त्व और सम्मान विवादसे परे है। विदुरका कथन है—"सत्यं स्वर्गस्य सोपानं" (सत्य स्वर्गकी सीढ़ी है)—महाभारत।

सत्यके समान निर्विवाद आधार पर आश्रित रहनेके कारण हमारी संस्कृति भी निर्विवाद है। यही कारण है कि जब तक हमने विदेशियोंको अपनी संस्कृतिमें मिलानेकी चेष्टा की, उन्हें हमारी संस्कृति अपनानेमें कोई कठिनाई नहीं हुई।

भारतीय संस्कृतिकी विश्वको कई महत्वपूर्ण देन हैं। उनमें "सशून्य दशांशगणना विधि" भी एक है। प्राचीन कालमें रोमनोंने अंककी मोटा-मोटी विधि बनायी थी। वे अपनी भाषाके अक्षरोंका उपयोग अंकोंके रूपमें करते थे, लेकिन उस प्रणालीके आधार पर अनेक अंकोंका एक साथ लिखा जाना कठिन था। भारतकी अंकविधिका प्रचार सर्वप्रथम अरबीमें हुआ। वहीं अंकोंको "हिंसा" कहते हैं, जिसका अर्थ हुआ—"हिन्दसा"। "एन सायक्लोपीडिया ब्रिटानिका" में "जीरो" (शून्य) के सम्बन्धमें एक स्थलपर लिखा गया है—"यह निश्चित है कि हमारी 'सशून्य दशांशगणना विधि' अपने पूर्ण विकसित रूपमें भारतमें ही उत्पन्न हुई।" अरबके विद्वान् इस बातको स्वीकार करते हैं कि अंकगणितके साथ-साथ बीजगणित, रेखागणित तथा चिकित्सा-शास्त्र आदि विज्ञान अरबोंने भारतसे सीखा। बादमें अरबों द्वारा उनका प्रचार यूरोपमें किया गया।

नाना प्रकारके विज्ञानोंके अतिरिक्त प्राचीन भारतने अपने

व्यापार तथा धार्मिक-प्रचारके द्वारा विश्वके अनेक भागोंको प्रभावित किया था। भारतीय जहां भी गये, प्रेम और शान्तिका सन्देश उनके साथ गया। महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने पर भी प्राचीन भारतने कभी अपनी शक्ति और ज्ञानका दुरुपयोग नहीं किया। इसका फल यह हुआ कि संसारमें भारतीय संस्कृति सदा आदरका स्थान पाती रही और वह स्थान आज भी हमें प्राप्त है। इस ऐतिहासिक और सम्मानीय पृष्ठभूमिका उपयोग कर हम तेजीके साथ नेतृत्वकी भावनासे नहीं, बल्कि सेवाकी भावनासे संसारके हृदयको जीत सकते हैं

(१६)

भारतीय संस्कृतिका संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया गया है। अब हमें देखना चाहिये कि संस्कृतिकी कसौटी पर कसने पर इसका रंग कैसा उतरता है।

मनुष्यको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—शरीर और मन। उन्नत अवस्थामें वह उसी समय पहुँच सकता है, जब उसके इन दो भागोंकी उन्नति समान रूपसे हो। एक भाग विकसित और दूसरा भाग अविकसित रहने पर विकसित भागसे भी पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता। भारतके आर्य इस तत्त्वको आरम्भसे ही समझ गये थे, इस कारण उन्होंने अपने

व्यक्तिगत जीवन तथा समाजको इस रूपमें ढाला कि शारीरिक और मानसिक उन्नति उन्हें समान रूपसे प्राप्त हुई।

संसारके कई प्राचीन राष्ट्रोंने इस तत्त्वको समझनेमें भूल की। उदाहरण स्वरूप एथेन्स और स्पार्टाकी संस्कृतिको लिया जा सकता है। प्राचीन स्पार्टाकी वीरताकी कथा विश्व-विख्यात है। वहांके निवासी केवल उन बच्चोंको ही पालते थे, जिनमें उन्हें वीरताके लक्षण स्पष्टतः दिखलायी देते थे। इसकी जांच भी वे एक खास ढंगसे करते थे। कुछ दिनोंका हो जानेके बाद वे बच्चोंको पहाड़ पर छोड़ आते थे। जो बच्चा अपनी शक्तिसे पहाड़से नीचे उतर आता था, उसे वे होनहार समझकर सरकारके सुपुर्द कर देते थे। वहांकी सरकार उस भावी वीरका पालन-पोषण करती थी। जो बच्चा उतरनेकी चेष्टामें पहाड़से नीचे गिर गया, उसकी तो वहीं मृत्यु हो जाती थी। इस प्रकारके कठोर नियमोंका पालन कर स्पार्टाके लोगोंने अपनेको एक वीर जातिके रूपमें परिणत कर लिया था। लेकिन मानसिक विकासकी ओर उनका ध्यान नहीं गया। इस कारण उनकी संस्कृति कोई व्यापक महत्त्व प्राप्त नहीं कर सकी। इसके ठीक प्रतिकूल एथेन्सकी संस्कृति है। वहां मानसिक विकासकी ओर ही ध्यान दिया गया, पर शारीरिक विकासकी कोई चेष्टा न हुई। इस कारण वहांकी संस्कृति भी संसारमें आदरका स्थान न पा सकी।

भारतके आर्योंने अपने जीवनका निर्माण व्यापक रूपसे किया। चार आश्रमोंकी सृष्टि कर जीवनको वैज्ञानिक भागोंमें

बाँट दिया गया था। प्रथम आश्रम "ब्रह्मचर्य्य" में विद्याध्ययनकी व्यवस्था है, लेकिन इसके नामसे ही स्पष्ट है कि विद्याध्ययनके साथ-साथ नवयुवक ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण कर अपने शरीरको विकसित करनेका पूर्ण प्रयत्न करता था। इस तरह अन्य आश्रमोंके कार्यक्रममें भी इन दोनों भागोंके विकासकी व्यवस्था है। यही कारण है कि हजारों वर्ष तक चारों ओरसे घात-प्रतिघात सह कर भी हमारी संस्कृति आज भी ज्योंकी त्यों अपने स्थान पर वर्तमान है।

समस्याएँ और उनका समाधान

युग धर्मके अनुसार प्रत्येक युगमें समस्याओंकी उत्पत्ति होती है। इनका समाधान ही मानवताकी वास्तविक कसौटी है। समस्याओंकी उत्पत्ति तथा उनके समाधानकी शक्ति ही मनुष्य और पशुके बीच सबसे बड़ा भेद है। पशुओंमें समस्या समाधान की शक्ति नहीं होती। इस कारण प्रकृति स्वयं उनकी सीमित समस्याओंका समाधान कर देती है। लेकिन मनुष्यको समस्या समाधानकी शक्ति तथा साधन प्रदान कर प्रकृति उससे इनके उचित उपयोग की आशा रखती है। सीमाके भीतर समस्याओंका अस्तित्व जीवन और जागृतिका चिन्ह है। उन्नत और जाग्रत व्यक्तियों तथा राष्ट्रोंके सामने उनकी महानताके अनुकूल महान समस्यायें भी उपस्थित होती हैं। समस्याओंका स्तर उनसे सम्बन्धित लोगोंके स्तरके समान ही रहता है। अमेरिका तथा रूस जैसे उन्नत देशोंके सामने भी विकट समस्याएँ हैं। लेकिन अन्न और वस्त्रकी समस्या उन्हें नहीं सताती। संसार पर अपना प्रभाव स्थापित करना ही उनका प्रमुख स्वप्न है। उनकी समस्या की ऊँचाईसे उनकी उन्नत स्थितिकी ऊँचाईका सरलतासे अन्दाजा लग जाता है।

लेकिन जब हम अपनी समस्याओंकी ओर दृष्टिपात करते हैं,

तो हमारी दरिद्रता और बेबसीका नग्न चित्र सामने उपस्थित होता है। जीवन सम्बन्धी आरम्भिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें भी हम असमर्थ हैं। साथ ही प्रतिष्ठित राष्ट्रोंकी श्रेणीमें उचित स्थान प्राप्त करनेके लिये हमें उन्नत देशोंके स्तर तक पहुँचना होगा। वर्तमान युगमें विज्ञानकी वृद्धिके कारण समस्याओंकी भी वृद्धि हो गयी है। लोगोंकी आवश्यकताओंको विज्ञानने कोमल सुखोंका प्रलोभन देकर अत्यन्त बढ़ा दिया है। साथ ही भौतिकताके विस्तारके कारण लोगोंके मनोभावमें परिवर्तन होता जा रहा है।

अधिकार प्राप्तिके लिये सभी उत्सुक दिखलायी देते हैं। लेकिन अधिकार प्राप्तिकी प्रथम आवश्यकता उत्तरदायित्वकी ओर लोगोंका ध्यान नहीं जाता। अधिकारके साथ उत्तरदायित्व स्वतः ही आ जाता है। यदि उसकी पूर्ति न की जाय, तो अधिकारका आधार ही नष्ट हो जाता है। जीवनके किसी भी क्षेत्रमें उत्तरदायित्वके निर्वाहके बिना अधिकारसे वास्तविक लाभ नहीं उठाया जा सकता। पर हममें उत्तरदायित्व-पूर्तिकी भावनाका सर्वथा अभाव है। अन्य उन्नत देशोंकी तरह हम प्रत्येक अधिकार चाहते हैं। लेकिन आरम्भिक नागरिक अधिकारोंसे सम्बन्धित उत्तरदायित्वको भी पूरा करनेमें हम असमर्थ हैं। हम चाहते हैं कि हमारा पड़ोसी हमारे प्रति अपने उत्तरदायित्वको पूरा करे। लेकिन उसके प्रति हमारा भी कोई कर्त्तव्य है, इसे हम भूल जाते हैं। इसका सम्भवतः प्रधान कारण यह है कि

जीवनकी प्रारम्भिक आवश्यकताओंकी पूर्तिमें असमर्थ रहनेके कारण हम अन्य क्षेत्रोंकी ओर अपना उचित ध्यान नहीं दे पाते। अतएव सर्वप्रथम हमें आरम्भिक आवश्यकताओंकी पूर्तिको ओर अग्रसर होना होगा।

जनसंख्यामें वृद्धिके कारण आवश्यकताओंकी पूर्तिमें स्वतः कठिनाई आ जाती है और इस कारण समस्याओंकी संख्यामें वृद्धि स्वाभाविक है। साधारणतः हम अपनी वर्तमान समस्याओं को इन चार भागोंमें विभक्त कर सकते हैं :—

१—शिक्षा समस्या

२—औद्योगिक समस्या

३—खाद्य-समस्या

४—राष्ट्रीय-समस्या

इन समस्याओंका समाधान करनेके लिये महान् उद्योगकी आवश्यकता है। इस समय प्रत्येक देश अथवा देश समूहोंके सामने समस्याएँ उपस्थित हैं। यथाशक्ति सभी उनका हल निकालनेका प्रयत्न कर रहे हैं। हमें भी दृढ़ता-पूर्वक इस ओर अग्रसर होना होगा। एक गौरवपूर्ण संस्कृतिके उत्तराधिकारी होनेके कारण हम आत्म-विश्वासके साथ इस ओर कदम बढ़ा सकते हैं।

(२)

शिक्षा-समस्या

अपनी समस्याओंकी ओर ध्यान देने पर सर्वप्रथम हमारा ध्यान शिक्षाकी ओर जाता है। शिक्षा मानव जीवनको मानवतापूर्ण बनानेका प्रमुख साधन है। उचित शिक्षाके द्वारा ही आजका युवक कलका सुयोग्य नागरिक बन सकता है। जिस प्रकार एक मजबूत भवनके निर्माणके लिये उसके दाँवेकी मजबूती आवश्यक है, उसी प्रकार एक सुयोग्य नागरिक बनानेके लिये बालकों तथा युवकोंके लिये उचित और प्राकृतिक शिक्षा अनिवार्य है।

"दि एम्स आफ एजुकेशन" में मि० अल्फ्रेडनार्थ ह्वाइटहेड लिखते हैं :—In the conditions of modern life the rule is absolute, the race which does not value trained intelligence is doomed. Not all your heroism, not all your social charm, not all your wit, not all your victories on land or at sea, can move back the finger of fate. To-day we maintain ourselves. To-morrow science will have moved forward yet one more step, and there will be no appeal from the judgement which will

then be pronounced on the uneducated. (आधुनिक जीवनकी वर्तमान अवस्थामें यह निश्चित है कि जो जाति शिक्षित बुद्धिको महत्व नहीं देती, उसका नाश अवश्य होगा। सारी वीरता, सारा सामाजिक आकर्षण, सारी बुद्धि एवं जल या थलकी सारी विजयके द्वारा भी भाग्यका मजबूत पंजा पीछेकी तरफ हटाया नहीं जा सकता। आज हम अपने स्थान पर जमे हैं। कल विज्ञान एक कदम और भी आगे बढ़ायेगा और उस समय अशिक्षितोंके विरुद्ध जो फैसला होगा, उसे बदलनेका कोई मार्ग दिखलाई न देगा।) आज युवक समस्याकी ओर समूचे संसार का ध्यान है, हमारे देशमें भी यह समस्या समस्यापूर्ण रूपमें उपस्थित है। युवकोंके अन्दर उत्तरदायित्वकी भावनाके बदले उच्छृङ्खलता बढ़ रही है। श्रेष्ठ-जनोंका उचित आदर करनेमें वे दिनोंदिन असमर्थ हो रहे हैं। निजत्वकी भावनाकी वृद्धिके कारण उनके सुन्दर रूपमें विकार उत्पन्न हो रहा है। सामूहिक रूपसे हानि-लाभके प्रश्न पर विचार करनेके बदले उनमें व्यक्तिगत स्वार्थका भाव बढ़ रहा है। इससे वे अधिक स्वच्छन्द हो गये हैं। इस स्वच्छन्दताका ही नाम तो उच्छृङ्खलता है।

संसारके युवक इस उच्छृङ्खलता रोगसे ग्रसित हो रहे हैं। लेकिन अपनी संस्कृतिमें नम्रता और सदाचारका महत्व बहुत अधिक रहनेके कारण हमें युवकोंकी वर्तमान मनोवृत्ति विशेष रूपसे खटकती है। किसी भी जातिके जीवन पर प्रकृति तथा जलवायुका गहरा प्रभाव पड़ता है। अतएव अपनी परिस्थिति-

विशेषके अनुकूल प्रत्येक देशको भिन्न-भिन्न समस्याओंका समाधान करना पड़ता है।

शिक्षा-पद्धतिमें दोष रहे विना युवकोंकी प्रवृत्ति दोषपूर्ण नहीं हो सकती। हमें इसके वास्तविक दोषको दूर करनेका प्रयत्न करना होगा। शिक्षा-पद्धति पर विचार करते समय हमारा ध्यान सर्वप्रथम प्राकृतिक संसर्गकी ओर जाना चाहिये। मानसिक विकासका क्षेत्र विद्याध्ययन है। लेकिन शारीरिक विकास तो प्रकृतिके द्वारा ही होता है। शरीरसे मनका अभिन्न सम्बन्ध है। अतएव जिस वस्तुके द्वारा शरीरके विकासमें सबसे अधिक सहायता मिलती है, वह पदार्थ मानसिक विकासके लिये भी निश्चित रूपसे लाभदायक समझा जायगा। लैटिनमें एक कहावत है :—"Mens sana corpore sano." (स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मस्तिष्क रह सकता है।)

विद्याध्ययनकालमें प्रकृतिसे जितना ही अधिक सम्पर्क रहेगा, उतना ही अधिक शारीरिक तथा मानसिक विकास होगा। लेकिन कृत्रिमताके वर्तमान युगमें निर्मित शिक्षा पद्धतिमें प्रकृति माताकी ममताके उपभोगका कोई महत्व नहीं रखा गया है। यही कारण है कि आजके युवकोंमें प्राकृतिक नम्रताका सर्वथा अभाव पाया जाता है।

प्राचीन भारतमें प्रकृतिकी छत्रछायामें ही बालकोंको योग्य नागरिक बनाने की चेष्टा की जाती थी। भारत सदासे प्रकृतिका कृपापात्र रहा है। यहाँ की प्रकृतिमें किसी प्रकारकी उग्रता नहीं

है। इङ्गलैण्ड की तरह यहाँ शीतसे बचनेके लिये कृत्रिम गर्मीका निर्माण कर प्रकृतिके प्रत्यक्ष सम्पर्कसे दूर रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यहाँके निवासी प्रकृतिके प्रत्यक्ष आलिंगनसे सदा आनन्द उठाते आये हैं। इस कारण हमारी शिक्षा योजनामें प्रकृतिके साथ विशेष सम्पर्क रहना आवश्यक है। विश्वकवि टैगोरने इस तथ्यके आधार पर ही अपनी अमर कृति शान्ति-निकेतनमें प्राकृतिक छायामें शिक्षा की योजना की और आज वहाँ प्राकृतिक सम्पर्कके आधारपर ही शिक्षा दी जाती है। हमें इस आधारपर ही अपनी शिक्षा पद्धतिको आश्रित करना होगा।

वर्तमान समयमें बालकों पर पुस्तकोंका इतना बड़ा बोझ लाद दिया जाता है कि उनके विकास की प्रवृतियाँ रुक-सी जाती हैं। उनके स्वाभाविक गुणोंका विकास नहीं हो पाता। शिक्षा पात्रके अनुकूल होनी चाहिये। मनुष्य मात्र है और शिक्षा वस्तु। जल किसी भी पात्रमें रखा जा सकता है। परन्तु पारा मिट्टीके पात्रमें नहीं रखा जा सकता। उसके लिये उसका बोझ सहन करने योग्य पात्र चाहिये। इसी तरह शिक्षाका बोझ लादते समय हमें प्रत्येक बालककी अवस्था तथा मनोवृत्ति पर पूरा-पूरा ध्यान रखना पड़ेगा। यह स्मरण रखना होगा कि पाठ्य-पुस्तकोंके लिये बालकोंका निर्माण नहीं होता; बल्कि पाठ्य पुस्तकोंका निर्माण बालकोंके लिये होता है। अपने स्थान पर पाठ्य-पुस्तकोंका भी महत्त्व है। लेकिन वर्तमान शिक्षा प्रणालीने उनके महत्त्वको

आवश्यकतासे अधिक बढ़ा दिया है। इससे लाभके बदले हानि हो रही है।

बालकों तथा युवकोंकी बुद्धिके विकासमें प्रकृतिसे अधिकसे अधिक सहायता लेनी चाहिये। शरीर प्रकृतिके पांच तत्त्वोंसे ही बनता है। अतएव उसके विकास की चेष्टामें इन पांच तत्त्वोंका उपयोग सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध होगा। वर्तमान पद्धतिको त्यागकर हमें इस दिशा की ओर ही अग्रसर होना चाहिये। इसके लिये गगन चुम्बी इमारतों की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है केवल पश्चिमसे आई हुई अप्राकृतिक मनोवृत्तिको दूर फेंकने की। इस मनोवृत्तिसे मुक्ति पाकर हमें मौलिक ढंगसे नवीन शिक्षा-पद्धतिका निर्माण करना होगा।

(३)

औद्योगिक समस्या

संसारके शक्तिशाली देशों की श्रेणीमें उचित स्थान प्राप्त करनेके लिए हमें औद्योगिक क्षेत्रमें उन देशों की बराबरी करनी होगी, जो इस दिशामें सफलता प्राप्त कर चुके हैं। भौतिकता प्रधान इस युगमें औद्योगिक विकासके बिना जीवन सुखी नहीं बनाया जा सकता। परन्तु युग-धर्मके पालन की चेष्टामें हमें उन बुराइयोंसे बचना पड़ेगा, जिनके शिकार आज पश्चिमीय देश हो रहे हैं, अन्यथा हमारा जीवन भी उन देशोंके समान ही कृत्रिम हो जायगा।

औद्योगिक विकासमें आगे बाजी मारनेवाले देश आज मानव प्रेमका वास्तविक मूल्य भूलकर समस्याओं पर समस्या उत्पन्न कर रहे हैं। उद्योग-धन्धोंकी कृत्रिमताने यहां पूँजीपति और मजदूरके बीच गहरी खाई खोद दी है। इससे पारस्परिक प्रेममें कमी स्वाभाविक है। हमें भौतिकताके इस साक्षात् स्वरूपसे दूर रहना होगा। इस दिशामें अपनी संस्कृतिसे हमें सहायता मिल सकती है। आध्यात्मिकताका अंकुर प्रत्येक भारतीय शिशुके हृदयमें पैतृक सम्पत्तिके रूपमें वर्तमान रहता है। चेष्टा करने पर औद्योगिक विकाससे लाभ उठाते हुए भी हम भौतिकता की कृत्रिमताओंसे अपनेको बचा सकते हैं।

बीसवीं सदीके आरम्भसे ही भारतमें उद्योग-धन्धे की प्रगति शुरू हुई। पहले अंग्रेजोंने पाट और सूत की मिलें बैठायीं। लेकिन भारतको औद्योगिक देश बनाने की दिशामें इन सीमित धन्धोंका महत्व नगण्यसा था। औद्योगिक विकास की भावना सर्वप्रथम पारसियोंमें जाग्रत हुई। जमशेदजी ताताने लोहेका महान उद्योग आरम्भ किया। इस विराट उद्योग की स्थापनाके कारण उन्हें भारतीय उद्योगपतियोंके पथ-प्रदर्शकका सम्माननीय पद प्राप्त हो सकता है।

पारसियोंके बाद अन्य व्यवसायी वर्ग भी औद्योगिक क्षेत्रमें आये। परन्तु उनकी चेष्टाओंके विरुद्ध उस समयके विदेशी शासकों की बाधायें कुछ कम न थीं। सम्भवतः अपने देशके स्वार्थके वशीभूत होकर वे बाधायें उपस्थित करते थे। फिर भी भारतीय

उद्योगपति दृढ़ता पूर्वक उन बाधाओंका सामना करते हुए आगे बढ़ते ही गये। कुछ दिनोंके बाद विदेशियों द्वारा संचालित उद्योग भी भारतीयोंके हाथ आने लगे। स्वतन्त्रता प्राप्तिके समय तक तो अनेक उद्योगोंपर भारतीयोंका प्रभुत्व स्थापित हो गया था।

भारतीय उद्योग संचालकोंके सामने सरकारी बाधाओंके अतिरिक्त पूंजी की समस्या भी विकट रूपमें उपस्थित थी। आज भी वह समस्या ज्यों की त्यों वर्तमान है। राजनीतिक दृष्टिसे देश अवश्य ही स्वतन्त्र हो गया है। परन्तु भारतीय उद्योगोंके लिये पूंजी की परतन्त्रता ज्यों की त्यों वर्तमान है। विदेशियोंने जब यहां उद्योग-धन्धा आरम्भ किया, तो लाभ-कर नहींके बराबर था। इस कारण वे अपने लाभका स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग कर सके। इस देशके प्रति उनका कोई प्रेम नहीं था। इस कारण लाभ की रकम इस देशमें लगानेके बदले वे अपने देश ले गये। प्रथम महायुद्धके बाद जब इस देशके निवासियोंने उद्योग-धन्धेकी ओर कदम बढ़ाया, तो सरकार दिनों दिन लाभ-कर की मात्रा बढ़ाती गयी और द्वितीय महायुद्धके समय तो यह चरम सीमाको पहुँच गया। इस कारण यहां के उद्योगको मुनाफेकी रकमसे अपना विस्तार करनेका अवसर नहीं मिल सका।

वर्तमान राष्ट्रीय सरकारने भी लाभ-करका रूप ज्यों-का त्यों रख छोड़ा है। फिर उद्योगके विस्तारका साधन कहांसे आवे? सरकार देशके कई उद्योगोंको कर्ज देकर आगे बढ़ाना चाहती है।

लेकिन सुसंगठित उद्योगोंको ही यह सुविधा प्राप्त हो सकती है। पर सहायताकी आवश्यकता तो उद्योगोंको आरम्भिक अवस्थामें ही पड़ती है। और इस अवस्थामें उन्हें कर्जके रूपमें भी सरकारी सहायता नहीं मिल सकती है। फिर देशका वास्तविक औद्योगीकरण किस तरह हो? इसके साथ ही इस सम्बन्धमें यह ध्यान देनेकी बात है कि अपने अर्जित धनपर किसीको जो ममता हो सकती है, वह सरकार द्वारा प्राप्त कर्जपर सम्भव नहीं। मुनाफेका धन लगाकर जिस एकाग्रतासे उद्योग-संचालक अपने कामका विस्तार कर सकता है, वैसा सरकारी कर्ज द्वारा कदापि नहीं हो सकता।

पूँजीके अतिरिक्त श्रमिक समस्या भी भारतके नवीन उद्योगोंके सामने विकट रूपसे उपस्थित है। युरोपके औद्योगीकरणके समय मजदूरोंकी कोई समस्या नहीं थी। वहाँके उद्योग-धन्धोंका पैर जम जानेके बाद ही इन समस्याओं की उत्पत्ति हुई। लेकिन उस अवस्थामें भी मजदूरोंने अपने निजी स्वार्थको देशके सामूहिक स्वार्थके सामने गौण समझा। इस कारण उनके संघर्षका रूप उद्योगके प्रति सदा सहानुभूतिपूर्ण ही रहा। इसके प्रतिकूल राजनीतिक संघर्षके दिनोंमें देशके नेताओंने मजदूरोंके अन्दर उठी हुई लहरका उपयोग राजनीतिक उद्देश्यकी पूर्तिमें किया। इस कारण उसकी धारा आंशिक रूपसे संहारात्मक हो गयी। स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद उस धाराका रुख बदलनेकी कोई चेष्टा न की गयी।

इस तरह भारतीय उद्योगको विपरीत परिस्थितियोंका ही

सामना करना पड़ रहा है। इन प्रतिकूलताओंका सामना करते हुए भी भारतीय उद्योग आगे बढ़ रहा है, यह कुछ कम प्रशंसाकी बात नहीं है। राजनीतिक अधिकारकी प्राप्तिके लिये आन्दोलन करनेवाले नेताओंसे औद्योगिक क्षेत्रके नेताओंकी कठिनाइयां कहीं अधिक थीं। राजनीतिक नेताओंको प्रधानतः संहारात्मक कार्य करना था। किसी-न-किसी तरह अंग्रेजी शासनका संहार करना ही उनका लक्ष्य था। लेकिन औद्योगिक नेताओंके सामने निर्माणात्मक कार्यक्रम था। उन्हें लाख विरोधका सामना करते हुए नवीन उद्योगका निर्माण करना पड़ा। देशके उद्योग पर भारतीयताकी छाप लगानेमें जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, उन्हें देखते हुए देशभक्तोंकी सम्माननीय श्रेणीमें विनम्र स्थान प्राप्त करनेका इन उद्योगपतियोंको भी अधिकार है।

देशकी सामूहिक सहानुभूति औद्योगिक विस्तारके लिये परम आवश्यक है। इस सहानुभूतिके अभावमें उद्योग-संचालक अपने महान् कर्त्तव्यकी पूर्ति कदापि नहीं कर सकते। प्रकृति प्रदत्त पदार्थोंको मानव उपयोगके योग्य बनाना सरल काम कदापि नहीं समझा जा सकता। प्रकृति मानव उपयोगका प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न करती है। लेकिन उन पदार्थोंको सरल उपयोगके योग्य बनाना उद्योग-धन्धोंका काम है। प्रकृति हमें रुई तथा गन्ना प्रदान करती है। लेकिन उन्हें कपड़ा और चीनीके रूपमें बदलना हमारा काम है। प्रकृति प्रदत्त पदार्थोंको सुलभ उपयोगके उपयुक्त रूपान्तरित करना उद्योग-धन्धोंका वास्तविक उद्देश्य है। भेदभावकी भावनासे

रहित होकर इस उद्देश्य तक पहुंचनेकी चेष्टाको औद्योगिक क्षेत्रका आध्यात्मिक पहलू समझा जा सकता है।

उद्योगपतियोंका कर्त्तव्य है कि उपयोगकी चीजें वे इतनी अधिक मात्रामें निर्माण कर दें कि किसीको भी इनका अभाव नहीं रहे और जब तक वे अभावरहित स्थिति उत्पन्न न कर सकें, स्वयं भी अपनी आवश्यकताओंको सीमित रखें। इस भावनाके द्वारा वे दूसरोंके हृदयमें सद्भावना उत्पन्न कर सकेंगे, जो देशके विकासके लिये परम आवश्यक है।

आज हमें विदेशोंके सुसंगठित उद्योगोंसे प्रतियोगिता करनी पड़ती है। हमारे देशवासियोंको कारखानोंमें उन्नत देशके श्रमिकों की अपेक्षा अधिक परिश्रमके साथ अधिक समय तक काम करना पड़ता है। यह सच है कि उन देशोंके उद्योग-धन्धोंको आरम्भिक अवस्थामें किसी प्रकारकी प्रतियोगिता तथा प्रतिकूलताका सामना करना नहीं पड़ा। लेकिन वर्तमान युगमें जब हम अन्य कठिनाइयोंको झेलते हुए भी आगे बढ़ रहे हैं, तो कार्यको सरल बनाने की दिशामें क्या कुछ नहीं किया जा सकता? यदि हम संसारकी वर्तमान प्रगतिके अनुसार सावधानीसे कार्य करें, तो उपरोक्त प्रश्नका उत्साहवर्द्धक उत्तर मिल सकता है। उद्योग-धन्धोंके श्रेणीवद्ध विवेचनके द्वारा हमें अपनी वास्तविक कमजोरियोंका ज्ञान प्राप्त कर उन्हें दूर करना चाहिये। साधारणतः उद्योग-धन्धोंको इन श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है:—

(१) आधारमूलक

(२) निर्माणात्मक

(३) उत्पादक

इन तीन भागोंमें सुविधाकी दृष्टिसे हम पहले अन्तिम भाग पर ही विचार करेंगे। इस समय अपने देशमें जितने भी उद्योग हैं, वे प्रायः सभी इसी श्रेणीमें आ जाते हैं। जिन उद्योग-धन्धों से प्रत्यक्ष व्यवहारकी चीजोंका उत्पादन हो, उन्हें उत्पादक श्रेणीमें रखा जा सकता है। वस्त्र, लोहा, सीमेन्ट, चीनी, आमोद-प्रमोद की सामग्रियाँ, यातायातके साधन, औषधि तथा उपयोगकी अन्य सभी चीजें इस श्रेणीमें सम्मिलित हैं। विदेशी मेशीनोंके सहारे हम अपनी शक्तिके अनुसार इस श्रेणीका उद्योग बढ़ा रहे हैं। मेशीनोंके मूल्यके रूपमें प्रतिवर्ष प्रचुर धन विदेश चला जाता है। साथ ही हम उद्योगके वास्तविक ज्ञानसे भी वंचित रह जाते हैं।

यदि हम मेशीनोंका स्वयं निर्माण करने लग जांय, तो बेकारी की समस्या हल करनेमें भी कुछ सहायता मिल सके। मेशीनों को बनानेके उद्योगको ही निर्माणात्मक उद्योग कहा जा सकता है। इस श्रेणीके कारखानोंमें भिन्न-भिन्न उद्योग-धन्धोंके उपयोगकी मेशीनें बनती हैं। इस उद्योगका अपने देशमें सर्वथा अभाव है। इस श्रेणीके उद्योगकी स्थापनाके बिना देश कभी वास्तविक उन्नति नहीं कर सकता।

आधारमूलक उद्योग उसे कहते हैं, जिसके द्वारा द्वितीय श्रेणीके कारखानोंको चलाने योग्य मेशीनोंका उत्पादन हो। इस श्रेणीकी मेशीनों द्वारा मेशीनोंका निर्माण करनेवाले विशालकाय

कारखानोंका संचालन होता है। यदि सुविधाकी दृष्टिसे हम इस श्रेणीके कारखानोंका निर्माण इस समय न करें, तब भी हमारा काम चल सकता है। क्योंकि इस श्रेणीके अन्तर्गत आनेवाली मेशीनोंका मूल्य अधिक नहीं होता और उनका जीवन भी बहुत बड़ा रहता है। इस श्रेणीकी मेशीनोंको एक बार विदेशोंसे मंगा लेने पर लगभग पचास वर्षोंके लिये छुट्टी मिल जा सकती है।

अतएव आधारमूलक उद्योगको भविष्यके लिये छोड़, हमें निर्माणात्मक उद्योग तुरन्त आरम्भ करना चाहिये। केवल उत्पादक उद्योगके सहारे हम उन्नति नहीं कर सकते। ऐसी दशामें विस्तारकी हमारी शक्ति सीमित रह जायगी। यदि हम बिजलीसे चलनेवाली रेलोंका निर्माण करना चाहें, तो निर्माणात्मक उद्योगके बिना ऐसा करना सम्भव नहीं हो सकता। इसी तरह अन्य आवश्यकताओंके सम्बन्धमें भी यह बात लागू है।

इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें तात्कालिक लाभके बदले भविष्यमें होनेवाले स्थायी लाभकी ओर ध्यान देना होगा। विदेशोंसे आनेवाली मेशीनों पर हम कब तक भरोसा कर सकते हैं? यदि दुर्भाग्यवश तृतीय विश्व-युद्ध छिड़ गया, तो क्या हम अमेरिका तथा ब्रिटेनसे मेशीनें प्राप्त कर सकेंगे? मेशीनोंकी कौन कहे, उस दशामें उनके पुर्जोंको भी प्राप्त करना हमारे लिये कठिन हो जाएगा।

इस दिशामें हमें जापानसे शिक्षा लेनी चाहिये। उस टापू देशने विदेशोंसे मेशीनें मंगानेके बदले मेशीनोंके निर्माणको

सामग्रियां मँगा स्वयं मेशीनोंका निर्माण किया। फलस्वरूप उसे इस दिशामें अधिक दिनों तक विदेशोंका मुँहताज नहीं रहना पड़ा और ठोस सफलता मिल सकी। इस पथका अनुकरण किये बिना हमारा भी परित्राण सम्भव नहीं। मेशीनोंके निर्माणमें हमें अपनी शक्तिका पूर्ण उपयोग करना होगा। ऐसा करने पर सम्भव है कि लगभग पांच वर्षोंके लिये हमें उत्पादनके क्षेत्रमें कोई लाभ न हो। लेकिन मेशीनोंके निर्माणमें सफलता प्राप्त करनेके बाद हम ठोस आधारपर औद्योगिक विकास कर सकेंगे। कच्चे मालकी हमारे देशमें कमी नहीं है। जापान तथा ब्रिटेन जैसे देश मेशीनोंके लिये स्वतन्त्र होते हुए भी कच्चे मालके लिये विदेशोंके आश्रित हैं। लेकिन यदि हम मेशीनोंके मामलेमें स्वतंत्र हो जांय, तो हमें किसी भी चीजकी कमी न रह जायगी और सरलतासे विश्वव्यापी बाजारमें हम प्रतियोगिता कर सकेंगे।

हमारा औद्योगिक-विकास अभी शिशु-अवस्थामें ही है। अपनी विशाल आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये अभी हमें बहुत कुछ करना है। साधनोंकी हमारे पास कमी नहीं है। सावधानी तथा लगनके साथ यदि हम अपने साधनोंका उपयोग करें, तो निकट भविष्यमें भारत औद्योगिक क्षेत्रमें सम्मानीय स्थान प्राप्त कर सकता है। लगभग दस वर्षोंकी चेष्टाके फलस्वरूप ही भारतीय वस्त्र-उद्योगने पूर्वी देशोंमें अपने लिये महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। थोड़ी चेष्टाके द्वारा हम विदेशोंमें चीनीका निर्यात भी सफलता पूर्वक कर सकते हैं।

यह निश्चित है कि इस सामूहिक युगमें सरकारी संरक्षणके बिना कोई भी देश किसी दिशामें अग्रसर नहीं हो सकता, पर सरकारी हस्तक्षेपकी अधिकता होने पर उद्योगके विस्तारमें बाधा उत्पन्न हो जाती है। राष्ट्रीय हितकी दृष्टिसे सरकारी नियन्त्रणको सावधानी पूर्वक सीमावद्ध करना होगा। नियन्त्रणके नाम पर हस्तक्षेप सर्वथा अवांच्छनीय समझा जायगा। ऐसी अवस्थामें उद्योगपति विश्वासके साथ अपनी सारी शक्तिका उपयोग विकास-पथमें नहीं कर पाता। इससे न तो किसीका व्यक्तिगत लाभ होता है और न देशका सामूहिक लाभ ही।

अधिकारकी लालसा मानव-प्रकृतिके साथ छायाकी तरह रहती है। इससे विच्छेदकी आशंका मनुष्यकी शक्तिको सुसंगठित नहीं रहने देती। उसकी सफलतामें कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं। अतएव आवश्यकतासे अधिक सरकारी हस्तक्षेप होने पर उद्योगपति स्वयं अपनी प्रगतिको आशंकाकी दृष्टिसे देखने लगता है। ऐसी दशामें उद्योगका विस्तार किस प्रकार सम्भव हो सकता है? इधर न केवल उद्योगपतिके लाभकी दृष्टिसे, बल्कि देशके सामूहिक लाभके लिये उद्योगका विस्तार आवश्यक है। अतएव सफलता प्राप्त करनेके लिये किसी-न-किसी प्रकारका निश्चित मार्ग निकालना ही पड़ेगा।

वर्तमान युगमें दो प्रणालियोंके द्वारा उद्योग-धन्धोंका संचालन होता है। प्रथम तो सरकारी संरक्षणमें उद्योगपतियोंके द्वारा और द्वितीय स्वयं सरकारके द्वारा। सरकारी प्रबन्धमें केवल

रूसमें ही उद्योग-धन्धोंका विस्तार हुआ है। चीन तथा रूसी प्रभावके दो-एक युरोपियन देश अब इस दिशामें अग्रसर हो रहे हैं। इस सम्बन्धमें यह ध्यान देनेकी बात है कि यदि सरकारको उद्योग-धन्धोंको अपने हाथमें लेना हो, तो रूसकी भाँति तानाशाही (Dictatorship) की स्थापना करनी होगी। क्योंकि उद्योगके संचालनमें एक मस्तिष्कके आधिपत्यकी परम आवश्यकता होती है। यहाँ एक क्षणमें लाखों रुपयोंका वारा-न्यारा करना पड़ता है। औद्योगिक निर्णयोंमें लालफीतेके विख्यात विलम्बकी कदापि गुञ्जाइश नहीं रहती। साथ ही निर्णायकको हर तरहकी स्वतन्त्रता चाहिये। यदि उसके निर्णयके फलस्वरूप लाभके बदले भीषण हानि हुई, तब भी इस सम्बन्धमें उससे स्पष्टिकरणकी मांग करने वाला कोई न हो। क्योंकि हानि होनेकी अवस्थामें यदि उसे संकटमें पड़नेका भय रहे, तो खुले मस्तिष्कसे वह कभी कोई निर्णय न कर सकेगा। दुविधामें दिया गया औद्योगिक निर्णय बड़े भाग्यसे ही लाभदायक सिद्ध हो सकता है। यदि किसी सरकारी अधिकारीको औद्योगिक निर्णयका अधिकार दिया जाय, तो उसका वह अधिकार अत्यन्त व्यापक तथा निर्विवाद होना चाहिये। इस प्रकारका अधिकार प्राप्त करनेवाला व्यक्ति ही तो तानाशाह कहा जाता है।

प्रश्न उठता है कि भिन्न-भिन्न कारणोंसे बाध्य होकर यदि तानाशाहोंका ही आधिपत्य हो जाय, तो क्या औद्योगिक विकास पूर्णता प्राप्त कर सकेगा ? इस सन्बन्धमें प्रायः रूसकी सफलताओं

का उल्लेख किया जाता है ; लेकिन रूसी सरकारके प्रचारकों द्वारा प्रचारित कागजके पन्नोंके सिवा इन सफलताओंका कोई दूसरा प्रमाण दिखलायी नहीं देता और न तो बाजारमें ही रूसी सफलताओंका कोई प्रमाण मिलता है और न रूसका भ्रमण करनेवाले यात्री ही स्वतन्त्रतापूर्वक इसका अन्दाजा लगा पाते हैं। वहाँकी सरकारने समूचे रूसको एक गुप्त किलेके रूपमें परिणत कर दिया है। यह किलेबन्दी क्यों ?

इसका वास्तविक उत्तर ढूंढ़नेकी चेष्टामें हमें रूसी सरकारके मुख्य पत्र "प्रवदा" के एक अग्रलेखसे सहायता मिल सकती है। १९५३ ई० के २३ मार्चके अग्रलेखमें उसने रूसके मेशीन-उद्योगको अपना घर सुव्यवस्थित करनेकी चेतावनी दी है। पत्रका कहना है कि इस उद्योगमें नवीन प्रगतियोंका गलत उपयोग किया जा रहा है तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें औद्योगिक कार्यमें दक्ष लोगोंके उचित विभाजनकी ओर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। आगे चलकर "प्रवदा" ने कहा है कि इस विभागको संचालित करनेवाले मन्त्रियोंकी अधिक संख्याके कारण सबसे अधिक कठिनाई उपस्थित होती है।

उपरोक्त उद्धरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कम्युनिस्ट-प्रचारक रूसका जो स्वर्ण-चित्र रखते हैं, उसमें वास्तविकता अधिक नहीं है। तानाशाही-शासनकी मजबूरियोंको झेलते हुए भी रूस औद्योगिक विकासमें पूर्ण सफल नहीं हो रहा है और ऐसा होना सम्भव भी नहीं। एक तानाशाहको प्रधानतः राजसत्ताका लोभ

रहता है और इस स्वार्थको सुरक्षित रखनेकी चेष्टामें ही उसकी अधिकांश शक्तियाँ खर्च हो जाती हैं। उसे किसी-न-किसी प्रकार जनतामें अन्धभक्ति अथवा उन्मादकी भावना भरनी पड़ती है। यदि किसी भी समय इस उन्मादमें कमी हो जाय, तो तानाशाहका अस्तित्व ही खतरेमें पड़ सकता है। परन्तु ठोस औद्योगिक विकासका मार्ग किसी भी प्रकारके उन्मादसे दूर और बहुत ही दूर समझा जायगा।

अब रूसको अपने भाग्य पर छोड़, हम अपने देशकी परिस्थिति पर विचार करते हैं। यहांके उद्योग-धन्धोंकी उन्नति एक निश्चित पथका अनुसरण किये बिना नहीं हो सकती। इन दिनों उद्योग-धन्धों पर सरकारी आधिपत्यकी हवा बह रही है, लेकिन गणतन्त्रीय शासन-प्रणालीके अन्तर्गत इस प्रकारकी चेष्टा किसी भी तरह लाभदायक प्रमाणित नहीं हो सकती। ब्रिटेनका लोहेका उद्योग इस कथनका स्पष्ट तथा तात्कालिक प्रमाण है। मि० एटली की मजदूर सरकारने इस उद्योगको राष्ट्रीयकरणके नामपर सरकारी प्रबन्धमें ले लिया था, परन्तु सरकारी प्रबन्धमें आते ही व्यवस्था ढीली होने लगी और उत्पादनमें कमीके साथ-साथ खर्च बढ़ गया। फलस्वरूप संसारके बाजारमें इसकी प्रतियोगिता-शक्ति क्षीण होने लगी और ब्रिटेनके सामने राष्ट्रीय-संकटकी आशंका उत्पन्न हो गयी। बादमें नवीन चुनावके फलस्वरूप अनुदार दल सत्तारूढ़ हुआ और मि० चर्चिलकी सरकारने इस उद्योगको उन

उद्योगपतियोंके हाथमें फिरसे सौंप दिया, जिनसे तथाकथित राष्ट्रीयकरणके नाम पर यह लिया गया था।

उपरोक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक-विस्तार निश्चित तथा गम्भीर नीतिके विना कभी सम्भव नहीं है। जो देश इस समस्याको राजनीतिक दलबन्दीके साथ मिश्रित करेगा, वह कभी इस क्षेत्रमें सफल नहीं हो सकता। औद्योगिक-विस्तार एक विकट साधना है। साधकके रूपमें ही कोई इस दिशामें सफलता प्राप्त कर सकता है।

सरकारी अधिकारी कभी साधकके रूपमें दिखलायी नहीं दे सकते। वे सदा अपने उत्तरदायित्वको सीमित समझते हैं और समझते रहेंगे।

औद्योगिक-विस्तारमें श्रमका बहुत अधिक महत्व है। अब इस प्रश्न पर विचार करना चाहिये कि श्रमिकोंका स्वार्थ पूंजी-पतियोंकी अधीनतामें अधिक सुरक्षित रहेगा या सरकारी आधिपत्य में। सरकारी प्रबन्धमें जाने पर उद्योगपतिके बदले सरकार द्वारा नियुक्त प्रबन्धक उनका मालिक बन बैठेगा। उनके लाभकी दृष्टिसे तो गैरसरकारी प्रबन्धमें उद्योगका रहना ही अच्छा है। क्योंकि यदि उद्योगपति मजदूरोंके साथ कोई अन्याय करेगा, तो सरकार न्यायके लिये उसे बाध्य कर सकती है। परन्तु सरकार यदि स्वयं उद्योगपतिका स्थान ग्रहण कर ले, तब न्याय दिलाने वाला कोई दूसरा न रह जायगा। ऐसी दशामें उद्योग और श्रमके

बीच मतभेद होने पर ऐसी भीषण परिस्थिति उत्पन्न हो जा सकती है, जिससे समूचे देशको क्षतिग्रस्त होना पड़े।

इधर हम देखते हैं कि भारतीय उद्योगपतियोंकी सेवायें भी कम नहीं हैं। प्रतिकूल परिस्थितियोंमें उन्होंने भारतीय झण्डा फहराया। उनके द्वारा अर्जित धन तो देशकी ही सम्पत्ति है। न्यायके नाते उनकी आर्थिक शक्तिको ईर्ष्याके बदले सम्मानकी दृष्टिसे देखना चाहिये। तस्वीरको उलटकर देखनेसे वास्तविकताका अन्दाजा आसानीसे लग सकता है। यदि भारतीय व्यवसायी खून पसीना एक कर किसी-न-किसी तरह व्यावसायिक प्रधानता विदेशियोंके हाथसे न छीनते, तो फिर स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद हमारी परिस्थिति कैसी रहती? इस दशामें तो उद्योग-धन्धों पर विदेशी झण्डा ही फहराता दिखलायी देता। फिर ईरानकी तरह क्या हमारा राष्ट्रीय-जीवन संघर्षमय न हो जाता? अतएव यह मानना पड़ेगा कि भारतीय उद्योगपतियोंने अपनी शक्तिके अनुसार देशकी सेवा की है।

लेकिन यह कुछ अजीब-सी बात है कि आज राष्ट्रीय सरकार उद्योगपतियोंको विश्वासमें लेनेसे हिचकती है। स्पष्टवादिताके नाते हम स्वीकार करेंगे कि अधिकांश उद्योगपतियोंने लाभ-करके मामलेमें ईमानदारीसे काम नहीं लिया। लेकिन उनके इस लालचसे एकत्रित धन भी तो किसी न किसी रूपमें देशके ही काममें लगा। यह बात निर्विवाद है कि उद्योगपति अपने लाभ का कम से कम ९०% (नब्बे प्रतिशत) उद्योगके विस्तारमें ही खर्च

कर डालता है और इस तरह उद्योग द्वारा किसी भी रूपमें अर्जित धन फिर उद्योगके ही पेटमें चला जाता है। इस क्रमसे ही संसारके प्रमुख उद्योगोंका विस्तार हुआ है। भारतमें इस समय लाभ-करका जो अनुपात है, उसे देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि किसी भी उद्योगके पास विस्तारकी आवश्यकताकी पूर्तिके योग्य धन नहीं बच सकता। संसारके किसी भी देशमें लाभ-कर इतना अधिक नहीं लिया जाता। कनाडाने अभी हाल में ही विराट उद्योगोंको प्रोत्साहन देनेके लिये लाभ-करमें कमी की है।

अमेरिकाकी वर्तमान समृद्धिका रहस्य सरकारी खजानोंमें नहीं, बल्कि उसके उद्योग-धन्धोंके आश्चर्यजनक विकासमें छिपा है। फोर्ड, जेनरल मोटर्स तथा अन्य कई औद्योगिक संस्थाओंका विकास विश्व-व्यापी पैमाने पर हुआ है। हेनरी फोर्डने छोटे पैमाने पर उद्योग आरम्भ किया था। लाभ होता गया और लाभकी रकमसे उद्योगका विस्तार होने लगा। क्रमशः विस्तार अपनी सीमा तक पहुँच गया। अधिक विस्तारकी और गुंजाइश न रही। इस कारण फोर्डको अपना विपुल धन आज दानके काममें खर्च करना पड़ रहा है। फोर्ड ट्रस्टके द्वारा समूचे संसार के पिछड़े हुए देशोंको सहायता दी जा रही है। भारतके ग्रामोंकी उन्नतिमें भी आज फोर्ड ट्रस्टसे भारत सरकारको यथेष्ट सहायता मिल रही है।

प्रश्न उठता है कि यदि अमेरिकन सरकार आरम्भिक अवस्था

से ही विराट लाभ-करका बोझ फोर्ड पर लाद देती, तो क्या उसकी उपयोगिता इतनी विस्तृत हो पाती? उद्योग-धन्धोंको प्रोत्साहित करनेकी भावनासे अपना लाभ-कर घटाकर, क्या कनाडाकी सरकारने गलती की है? भारतके शासन-सचालकोंको इन प्रश्नोंका उत्तर अपने हृदयके अन्दर टटोलना चाहिये।

इस स्थल पर इस प्रश्नके विवेचनकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि उद्योगोंका विस्तार उद्योगपतियोंकी अधीनतामें कराया जाय या नहीं। उपरोक्त विवेचनोंसे यह स्पष्ट है कि गणतंत्रीय प्रणालीके अन्तर्गत किसी भी अवस्थामें उद्योगोंका विस्तार सरकारी अधीनतामें लाभदायक रूपसे नहीं हो सकता। तानाशाही शासन-प्रणालीको इस दिशामें कुछ सुविधायें प्राप्त हैं। यद्यपि स्थायी रूपसे उन्हें भी सफलता नहीं मिल सकती। भारतीय भावना रूसकी भांति उग्रतापूर्ण नहीं है। यहांकी प्रकृति और प्रवृत्ति सदासे उग्रतासे पृथक् रही है। अतएव वर्तमान गणतंत्रीय सरकारको साहसपूर्ण नीतिका सहारा लेकर उद्योग-धन्धोंके विस्तारका वास्तविक मार्ग खोलना चाहिये।

इस सम्बन्धमें यह ध्यान देनेकी बात है कि औद्योगिक विकास सम्बन्धी हमारी चेष्टा ऐसी हो, जिससे निकट भविष्यमें हम विदेशोंसे आद्योगिक मामलेमें स्वतन्त्र हो जांय। दुःखके साथ कहना पड़ता है कि इस दिशामें हम जो कुछ कर रहे हैं, उससे तात्कालिक लाभके अतिरिक्त कोई स्थायी लाभ नहीं हो सकता। हम विदेशोंसे करोड़ों रुपयेकी मेशनरियां मंगाकर,

उनके द्वारा तुरत उत्पादन बढ़ानेकी चेष्टामें हैं। लेकिन स्थायी स्वार्थकी दृष्टिसे यह नीति अधूरी ही समझी जायगी। भारत सरकारको इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये।

हम फिर कहेंगे कि औद्योगिक विकासमें किसी भी प्रकारकी राजनीतिक दलबन्दीकी गुञ्जाइश नहीं है। जिस तरह अपूर्व त्याग दिखला कर हमने राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की, उसी प्रकार हमें आर्थिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त करनी होगी। त्यागकी भावनाके बिना कोई कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। इस चेष्टामें पूँजीपति, श्रमिक, जनता तथा सरकारको एकसाथ दृढ़ निश्चयके साथ आगे बढ़ना होगा। उत्पादनके सहारे जब हम अपनी समृद्धि बढ़ा लेंगे, तो हमारा भेदभाव भी स्वतः दूर हो जायगा।

समृद्धिकी अधिकतासे अभावहीनताकी स्थिति उत्पन्न होती है और वैसी स्थितिमें उग्रता स्वतः कम हो जाती है। यही कारण है कि अमेरिकामें आज कोई विशेष आन्तरिक राजनीतिक मत-भेद नहीं दिखलायी देता। आध्यात्मिकताकी पृष्ठभूमि पर औद्योगिक विकास कर, हम अभावपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं।

(४)

खाद्य-समस्या

जब हम अपने अभावोंकी ओर दृष्टि दौड़ाते हैं, तो हमें यह देखकर स्तम्भित रह जाना पड़ता है कि मानवकी सर्वप्रथम आवश्यकताओं तकका हममें अभाव है। मनुष्य मोटर और

रेडियोके बिना रह सकता है। वह चाहे तो मकानोंकी आवश्यकताको भी तिलाञ्जली दे सकता है तथा बाध्य होने पर कपड़ेके बिना भी अपना काम चला सकता है। लेकिन खाद्य-पदार्थके अभावमें वह जीवित नहीं रह सकता। अतएव अन्न स्पष्टतः हमारे जीवनके लिये अनिवार्य है।

लाड बोयड ओर कास्ट्रोकी "जिओगरफी आफ हंगर" नामक पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं :—

"Lack of any kind of food as occurs in famine has always been a major cause of death. Even in recent times more people have died from famine than have been killed in war. But these numbers are small when compared with the number whose diet is inadequate to maintain health and who consequently suffer to some degree from nutritional diseases. If hunger be used in this sense then according to the best pre-war estimates two-third of the population of the world are hungry."

अकालकी भांति किसी भी प्रकारके भोजनका अभाव सदासे मृत्युका प्रधान कारण होता आया है। आधुनिक कालमें भी युद्धमें मारे जानेवालोंकी अपेक्षा अकालसे मुखमें जानेवालोंकी संख्या कहीं अधिक है। लेकिन इनकी संख्या उन लोगोंसे कम है,

जो यथेष्ट भोजन नहीं मिलनेके कारण दुर्बलताजनित रोगोंके फलस्वरूप जीवन-लीला समाप्त करते हैं। यदि भूखका प्रयोग इस अर्थमें किया जाय, तो लड़ाईके पूर्व ली गयी सबसे अधिक प्रामाणिक गणनाओंके अनुसार संसारके दो तिहाई आदमी भूखे हैं।

आज इसी खाद्य-सामग्रीका हमारे देशमें सबसे अधिक अभाव है। कृषि-प्रधान होते हुए भी हमारा देश आवश्यकता-नुसार अन्न उत्पन्न नहीं कर पाता। यहाँ लगभग पचास प्रतिशत आदमी आवश्यकता लायक अन्न नहीं पाते। लेकिन जितना अन्न हम इस समय खर्च करते हैं, उतना भी यहां उत्पन्न नहीं होता। यदि हम अपनी आवश्यकताके मुताबिक अन्न विदेशोंसे मँगायें, तो हमारी आर्थिक स्थिति छिन्न-भिन्न हो सकती है। ऐसी दशामें यह आवश्यक है कि राष्ट्र-निर्माणके कार्यमें हम अन्न उत्पादनको प्रमुखताका स्थान दें।

सन्तोषका विषय है कि वर्तमान पंचवर्षीय योजनामें कृषिको प्रमुखता दी गयी है। यदि योजनाका यह भाग सफल बनाया जा सकेगा, तो निकट भविष्यमें हम अपने उत्पादनसे खाद्य संबंधी आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सकते हैं। जब तक अन्नके मामलेमें हम स्वावलम्बी न हो जांयगे, हमारा राष्ट्रीय जीवन सम्मानपूर्ण नहीं हो सकता।

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि इस समय जितनी भूमि कृषिके अन्तर्गत है, उसमें चेष्टा करनेपर २५ प्रतिशत की वृद्धि की

जा सकती है। साथ ही प्रति एकड़ इस समय जो औसत उपज हम प्राप्त करते हैं, उसकी अपेक्षा उन्नत देशोंमें दुगुनी-तिगुनी फसल होती है। फिर, कोई कारण नहीं कि वैज्ञानिक साधनोंका उपयोग कर, हम अन्न उत्पादनको आजकी अपेक्षा दोगुना न कर लें। यदि हम ऐसा कर सकें तो अन्न सम्बन्धी समस्या स्वतः हल हो जायगी। हमारे उत्पादनमें इस समय एक कमी और है। हमारे द्वारा उत्पादित पदार्थोंमें तुलनात्मक दृष्टिसे शक्ति की कमी पायी जाती है। उदाहरण स्वरूप यहांके गन्नेमें जावा तथा मारिशस आदि देशोंकी अपेक्षा चीनी की मात्रा कम होती है। साथ ही यातायात की असुविधाके कारण गन्ना मीलमें देरसे पहुँचता है। इस कारण रस सूख जानेके कारण चीनीकी मात्रामें कमी हो जाती है। फलस्वरूप चीनीके उत्पादनका खर्च हमारा बहुत अधिक हो जाता है। यही कारण है कि निजी आवश्यकतासे अधिक उत्पादित चीनी हम सरकारी सहायताके बिना बिदेश नहीं भेज पाते।

साथ ही हमारी कृषि योजनापूर्ण ढंगसे नहीं होती। आवश्यकताके अनुकूल हम खेती नहीं कर पाते हैं। फल यह होता है कि कभी-कभी किसी चीजका उत्पादन आवश्यकतासे अधिक हो जाता है और आवश्यकतासे कम उत्पादन तो वर्तमान समयमें हमारे दैनिक चर्य्याके रूपमें ही है।

कृषि योजना बनानेके लिये हमें कृषि पदार्थोंको श्रेणीवद्ध कर

लेना चाहिये। साधारणतः कृषि द्वारा उत्पन्न पदार्थोंको इन तीन भागोंमें बांटा जा सकता है :—

(१) प्रत्यक्ष खाद्यमें आनेवाले अन्न—जैसे गेहूं, धान तथा चना आदि।

(२) कलकारखानेके सहारे खाद्य उपयोगमें आनेवाली चीजें, जैसे—गन्ना, सरसों तथा विनौला आदि।

(३) खाद्यके अतिरिक्त अन्य उपयोगमें आनेवाले पदार्थ, जैसे—पाट, कपास आदि।

इस प्रकार श्रेणीवद्ध कर लेनेसे हम योजनापूर्वक कृपिकार्य कर सकते हैं। योजनाके अभावमें कभी-कभी विहार तथा उत्तर-प्रदेशके कई भागोंमें गन्नेकी फसलके कुछ अंश खेतमें ही जला देनेके लिये कृपकोंको वाध्य होना पड़ा है। उन क्षेत्रोंमें स्थित चीनी मीलोंमें वहाँ प्राप्त होनेवाले गन्नोंका पूर्ण उपयोग की शक्ति नहीं रहनेके कारण ही कृपकोंको इस प्रकारकी हानि उठानी पड़ी है। लेकिन यदि मीलोंकी आवश्यकताके अनुकूल ही उत्पादन किया जाता, तो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न नहीं हो पाती।

कृपिको सफल वनानेके लिये सर्वप्रथम ठीक समय पर उचित मात्रामें जलकी आवश्यकता पड़ती है। जल इन तीन स्थलोंसे हमें प्राप्त होता है—जमीनके नीचे, जमीनके ऊपर तथा आकाश मार्गसे।

जमीनके नीचे स्थित जल कुँआ तथा ट्यूबवेलके द्वारा कृपि-कार्यमें लगाया जा सकता है। जमीनके ऊपर बहनेवाले जलका

उपयोग नदी, नहर तथा झीलोंके द्वारा होता है। साथ ही वर्षा-कालके चार-पांच महीनोंके भीतर आकाश मार्गसे हमें इतना अधिक जल मिलता है कि उसके उचित संग्रह तथा अधिकता हो जाने पर उसे बाहर निकाल देनेकी व्यवस्थाके द्वारा हम कृषि-कार्यको बहुत अधिक आगे बढ़ा सकते हैं।

प्रकृतिने जलके रूपमें हमें अटूट सम्पत्ति दी है। उसके सुव्यस्थित उपयोगसे कृषिके साथ-साथ यातायातके क्षेत्रमें भी सुविधा प्राप्त कर सकते हैं। नहरोंके निर्माणसे कृषि द्वारा उत्पादित पदार्थोंका सुविधापूर्वक आदान प्रदान किया जा सकता है। प्रकृति-प्रदत्त इस अमूल्य सम्पत्तिके उचित संग्रह तथा वितरणका प्रबन्ध होना चाहिये। वर्षाके कई महीनोंमें इतना अधिक जल प्राप्त होता है कि झीलों तथा बड़े-बड़े जलाशयोंमें उनका संग्रहकर हम अन्य ऋतुओंमें लाभ उठा सकते हैं। साथ ही वर्षाकालमें विपुल जलराशिपर यदि नियंत्रण नहीं रखा जा सके, तो बाढ़के रूपमें हमें भीषण क्षति होती है। अकएव सुदृढ़ बांधों, विस्तृत नहरों तथा विशालकाय झीलोंका निर्माण कर हमें जल-समस्याको हल कर लेना चाहिये।

इन दिनों पंचवर्षीय योजनाके अनुसार बड़े-बड़े डैमों तथा बांधोंका निर्माण हो रहा है। इनके साथ ही विशाल रूपमें विद्युत उत्पादनका प्रयत्न भी जारी है। लेकिन इस समय हमारे ग्रामीण बिजली की शक्ति खर्च करने की क्षमता नहीं रखते। वर्तमान योजनाओं द्वारा निर्मित विद्युत शक्तिका वे अभी उपयोग नहीं

कर सकेंगे। अतएव इस दिशामें अपनी शक्ति अभी खर्च न कर हमें उन साधनोंका निर्माण करना चाहिये, जिनका कृपिकार्यमें तुरत उपयोग हो सके। विद्युत शक्तिके विस्तारका कार्य हम भविष्यके लिये छोड़ सकते हैं। हाँ, डैम तथा नहर आदिके निर्माणका कार्य और भी तेजीसे होना चाहिये।

जलकी उपयोगिता बढ़ानेका एक और सुप्त-साधन हमें प्राप्त है। रेल-पथके किनारे स्वभावतः उन गड्ढों की लम्बी श्रेणियाँ पायी जाती हैं, जिनकी सृष्टि रेल-पथके निर्माणकालमें स्वतः हो जाती है। इन गड्ढों तथा आसपास की जमीनका उपयोग मच्छरों को पालनेके सिवा और किसी काममें नहीं होता। यदि इन गड्ढोंको थोड़ा और गहरा कर एक दूसरेसे मिला दिया जाय, तो आवश्यकतानुसार सिंचाईके काममें बड़ी सहायता मिल सकती है।

जल सम्बन्धी साधनोंकी व्यवस्था करनेके साथ-साथ हमारा ध्यान भूमिको कृपियोग्य बनानेकी ओर जाना चाहिये। इस सम्बन्धमें यह ध्यान देनेकी बात है कि जिन खेतोंमें खेती की जाती है, उन्हें किसी प्रकारका विश्राम नहीं दिया जाता। फलस्वरूप उनकी उत्पादन शक्ति दिनों-दिन क्षीण होती जा रही है। खेतोंको विश्राम देनेका काम संगठित रूपसे करने पर बहुत लाभ हो सकता है। इस कार्यके लिये हमें प्रत्येक ग्रामकी भूमिको चार समूहोंमें बाँट देना चाहिये। प्रत्येक वर्ष इन समूहोंमेंसे एकको विश्रामके लिये छोड़ देना उपयोगी सिद्ध होगा। इस प्रकार प्रत्येक चार वर्षके बाद प्रत्येक खेतको एक वर्षका विश्राम मिल

जायगा। विश्राम प्राप्त खेतोंका उपयोग चारागाहके रूपमें किया जा सकता है। अतएव इस योजनाके द्वारा हमें पशु-पालनमें भी सहायता मिल सकती है।

इस प्रकार स्वतः ही संगठित तथा सामूहिक कृषिकी नींव पड़ जायगी। क्योंकि किसानोंको पड़तल भूमि छोड़नेकी योजनामें पारस्परिक सहायता लेनी ही पड़ेगी। अपनी भूमिका चतुर्थांश प्रत्येक किसान प्रत्येक वर्ष विश्रामकी योजनामें सम्मिलित करेगा। आगे चलकर पारस्परिक सहयोगकी भावना कृषि-क्षेत्रमें भी अग्रसर हो सकती है। फिर यांत्रिक कृषिका मार्ग प्रशस्त हो जायगा।

विश्रामके लिये छोड़े गये भूमि-समूहको छोड़ कर जो तीन-चौथाई भूमि बच जायगी, उसमेंसे कृषक अपनी जमीनके अनुपातके अनुसार जमीन निकाल कर खेती करेगा। इस प्रकारकी योजनासे ग्रामका उत्पादन निश्चित रूपसे बढ़ जायगा। इस प्रणालीसे एक विशेष लाभ यह होगा कि किसानोंको अपने छोटे-छोटे टुकड़ोंमें खेती करनेकी असुविधा न रहेगी। उन्हें उनकी पूरी भूमि एक ही जगह मिल जायगी। इस तरह वे सुविधापूर्वक खेती कर सकेंगे।

इस योजनाके अनुसार प्रत्येक वर्ष किसानोंको भिन्न-भिन्न खेतोंमें खेती करनी होगी। इस कारण वे किसी एक खेतको अपना खेत समझनेके भावुकतापूर्ण सुखसे वंचित हो जायंगे। लेकिन इसकी पूर्ति एक दूसरे रूपमें हो जायगी। ग्रामके सभी

किसान उस इलाकेके प्रत्येक खेतको अपनेपनकी दृष्टिसे देखने लगेंगे और इस तरह वहाँ एकताकी एक नवीन भावना उत्पन्न हो जायगी।

कृषि-क्षेत्रमें उत्पादन बढ़ानेके लिये खादोंकी परम आवश्यकता है। वैज्ञानिक साधनों द्वारा निर्मित खादोंको किसानोंके पास सुलभ मूल्यमें पहुँचाना आवश्यक है। सिन्दरी स्थित सरकारी खाद्य फैक्टरी द्वारा इस दिशामें उपयोगी प्रयत्न हो रहा है। परन्तु हमें इसके उत्पादनमें और भी वृद्धि करनी होगी।

हमारे कृषक प्रायः आँख मूँद कर कोई भी खाद खेतोंमें डाल देते हैं। लेकिन जिस तरह एक ही दवा प्रत्येक रोगमें फायदा नहीं करती, उसी तरह एक ही खाद प्रत्येक खेतकी उत्पादन-शक्ति नहीं बढ़ा सकती। इस कारण यह जानना आवश्यक है कि किस खेतको किस फसलके लिये किस प्रकारके खादकी आवश्यकता किस मात्रामें है। इस कार्यके लिये प्रत्येक थानेमें छोटी-छोटी प्रयोगशाला खोलनी चाहिये। इसके सहारे अनुसन्धान कर खादके रूपमें उस तत्त्वकी कमीकी पूर्ति की जाय, जिसका अभाव खेतमें हो।

खादके अतिरिक्त अच्छे बीजके उपयोगका प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। हमारे गरीब किसान अपने खेतमें ही उत्पन्न अन्नको बीजके लिये रख छोड़ते हैं। पहले तो जिस खेतमें अन्न उत्पन्न हुआ हो, उसी खेतमें बीजके रूपमें उसका उपयोग घातक है। बाहरसे बीज लाकर बोने पर उत्पादनमें वृद्धि हो जाती है।

पर हमारे किसान इतने गरीब और साधनहीन हैं कि रुपये खर्च कर, वे बीजके लिये वाहरसे अन्न नहीं खरीद सकते। इसके साथ ही जिन स्थानोंमें वे महीनों तक अपने द्वारा उपजाये अन्नको बीजके रूपमें रखते हैं, वहां बीज रखे जानेकी पूर्ण सुविधा नहीं रहती। अधिक ठण्डक तथा अधिक गर्मीसे बीजकी उत्पादन-शक्ति क्षीण हो जाती है! इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे किसान अपने द्वारा उत्पन्न किये गये अन्नका उपयोग वीजके रूपमें न करें।

बीज सम्बन्धी कठिनाईको दूर करनेके लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि सरकारी कृषि-विभाग प्रत्येक थानामें बीजका केन्द्र खोले। उन केन्द्रोंके द्वारा किसानोंको उनके द्वारा दिये गये अन्नके बदले उतनी ही मात्रामें उन्हें बीज दिया जाय। जैसे—यदि कोई किसान पांच मन गेहूं लावे, तो उस केन्द्रके द्वारा उस किसानको गेहूँका पांच मन बीज दे दिया जाय। इस तरह किसानको अच्छा वीज मिल गया और बरावर मात्रामें अन्न मिल जानेके कारण सरकारी विभागको कोई विशेष घाटा नहीं रहा। सरकारको कुछ घाटा सहकर भी इस प्रकारके वीज-केन्द्रोंका संचालन करना चाहिये।

वीज तथा उत्पादनकी प्रणालीका अन्नके गुण पर भी प्रभाव पड़ता है। गायको हम जैसा भोजन खिलाते हैं, उसके अनुसार ही गाढ़ा या पतला दूध मिलता है। उसी तरह अन्नमें शक्ति-शाली तत्त्वकी अधिकता या न्यूनता उसके उत्पादन प्रणाली पर

आश्रित है। इसलिये यह आवश्यक है कि राष्ट्रको सबल बनानेके लिये हम उचित ढंगसे खेती करें।

यह कुछ कम आश्चर्यकी बात नहीं है कि हमारा कृषि कार्य अभी तक प्रायः वैदिक कालीन प्रणाली के द्वारा ही चल रहा है। समयकी मांग तथा बढ़ी हुई आवश्यकता अधिकताके अनुसारको देखते हुए हमें अपनी प्रणाली बदलनी होगी। आधुनिक ढंगसे खेती करनेके लिये प्रचुर मशीनोंकी आवश्यकता है। विदेशोंसे ट्रैक्टर तथा अन्य सामान मँगाकर कृषि-कार्यको अग्रसर करनेकी चेष्टा की जा रही है। लेकिन वास्तविक समाधानके लिये शीघ्रसे शीघ्र इन चीजोंका उत्पादन यहाँ होना चाहिये। सरकार इस दिशामें उद्योग कर रही है। लेकिन और भी उद्योग की आवश्यकता है।

कृषि विकासका यातायात सम्बन्धी सुविधाओंसे भी बहुत अधिक सम्बन्ध है। शहरोंसे दूर बसनेवाले ग्रामोंको कच्ची सड़क के द्वारा अन्न ढोना पड़ता है। कहीं तो यातायातकी कठिनाइयों के कारण बेचारे किसानोंको अपने उत्पादनका उचित मूल्य भी नहीं मिल पाता। यातायातके साधनोंको सुविधापूर्ण बनाये बिना वास्तविक कृषि उन्नति कठिन है।

इस कठिनाईको दूर करनेके लिये हमें नहरों तथा अच्छी-अच्छी सड़कोंका निर्माण करना चाहिये। पेट्रोल टैक्स तथा रोड टैक्स आदि द्वारा प्राप्त रकमोंको सड़क निर्माणके कार्यमें खर्च करना आवश्यक है। साथ ही प्रचार कार्य द्वारा सरकार ग्रामीणों

को अपनी सहायता स्वयं करनेके लिये उत्साहित करे। इस प्रकार आत्मनिर्भरताका भाव उत्पन्न होनेके बाद सरकारको आर्थिक सहायता तथा ग्रामीणोंकी शारीरिक सहायताके संयोगसे सुलभ रूपसें सड़कोंका निर्माण हो सकता है।

किसानोंकी कठिनाइयाँ यहीं समाप्त नहीं हो जाती। उनके उत्पादनको लाभदायक रूपसे बेचनेके लिये सहयोग समितियोंका विस्तार आवश्यक है।

खाद्य-समस्याके अन्तर्गत ही पशु-पक्षियोंकी भी समस्या आ जाती है। जलचर, थलचर तथा नभचर आदि इस वर्गमें आ जाते हैं। इनमेंसे कुछ तो हमें खाद्य-सामग्री प्रदान करते हैं और कुछ मनोरंजन। इनके द्वारा दूध तथा मांसके रूपमें हमें खाद्य मिलता है। प्रकृति द्वारा उत्पन्न प्रत्येक पशु-पक्षी तथा जीव-जन्तुकी कुछ-न-कुछ उपयोगिता है। भिन्न क्षेत्रोंमें निर्माण तथा संहारके द्वारा ये सृष्टिके संचालनमें सहायक होते हैं।

कृषि-प्रधान देश होनेके कारण भारतमें सदासे पशुओंका सम्मान रहा है। लेकिन जब दरिद्रताके कारण हम अपना ही पेट नहीं भर पाते, तो हमारे द्वारा पाले गये पशुओंकी अवस्था किस प्रकार उन्नत हो सकती है? परन्तु खेतोंकी उत्पादन-शक्ति बढ़ानेके साथ ही हमें पशुओंकी भी उन्नति करनी होगी। इसमें अन्न-उत्पादनकी वृद्धिसे हमें सहायता मिलेगी। क्योंकि अन्न उत्पादनकी वृद्धिके अनुपातसे चारोंके उत्पादनमें भी वृद्धि होगी।

उन्नत देशोंकी तुलनामें हमारी गायें बहुत कम दूध देती हैं।

वंश परम्परागत दुर्बलताने उन्हें शक्तिहीन कर दिया है। हमें प्रत्येक दृष्टिसे उन्हें शक्तिशाली बनाना होगा।

देशके विभाजनके बाद अधिक दूध देनेवाली गायोंकी अधिकांश नस्लें पाकिस्तानके अन्तर्गत हो गयीं। पूर्व पंजाबकी नागोरी, पश्चिम पंजाबकी मिण्टगोमरी तथा सिन्धकी थारपारकर नस्ल अधिक दूध देनेके लिये प्रसिद्ध है। लेकिन नागोरी नस्लके सिवा उपरोक्त दो नस्लें तो अब पाकिस्तानकी सम्पत्ति हैं। फिर भी सिन्धकी सीमासे सम्बन्धित राजपूतानेके कई भागोंमें थारपारकर नस्लकी गायें पाई जाती हैं। इनकी उन्नतिके द्वारा इस नस्लकी कमी पूरी की जा सकती है। साथ ही दो भिन्न-भिन्न उपयोगी नस्लोंका सम्मिश्रण कर हम अधिक उपयोगी नस्लकी सृष्टि कर सकते हैं। सरकारके कृषि-विभागको इस दिशामें अधिक तत्परतासे काम लेना चाहिये।

भैंसोंकी नस्लके सम्बन्धमें हम अधिक भाग्यशाली हैं। पूर्वी पंजाबके रोहतक जिलेमें पायी जानेवाली मुर्रहा नस्लकी भैंस संसारमें सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। लेकिन दिनोंदिन यह नस्ल कमजोर तथा दुर्लभ होती जा रही है। हमें इसकी उन्नति तथा वृद्धिकी चेष्टा करनी चाहिये।

खाद्य-समस्याकी चर्चा समाप्त करनेके पहले जंगलोंका उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। इधर कई वर्षोंसे वन महोत्सव आरंभ कर उचित दिशामें कदम बढ़ाया गया है। पूर्ण वर्षाके लिये वृक्षोंका अस्तित्व आवश्यक है। वृक्षोंमें बादलोंको अपनी ओर आकर्षित

करनेकी शक्ति है। अतएव स्वभावतः वृक्षोंसे परिपूर्ण क्षेत्रमें वर्षा यथेष्ट होती है। साथ ही जंगलोंके द्वारा हमें लकड़ीके रूपमें एक उपयोगी सम्पत्ति प्राप्त होती है। सरकारके जंगल विभागको अपना क्षेत्र कुछ विस्तृत करना चाहिये।

उपयोगी वृक्षोंको योजनापूर्ण ढंगसे लगाना आवश्यक है। फल मानव खाद्यका एक उपयोगी अंश होता है और उसकी प्राप्ति उपयोगी वृक्षोंके द्वारा ही हो सकती है। अतएव खाद्य योजनाओंमें स्वभावतः ही वृक्ष अपना उचित स्थान ग्रहण करेंगे।

(५)

राष्ट्रीय समस्या

हमारा राष्ट्रीय-जीवन स्वतन्त्रा प्राप्तिके बाद वास्तविक रचनात्मक क्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ है। ब्रिटिश राजत्वके दिनोंमें हमारी राष्ट्रीयताका विशेष अर्थ था, येनकेन प्रकारेण ब्रिटिश-शासनको विध्वंश करना। इस विध्वंशात्मक लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये हम रचनात्मक कार्यक्रमका भी सहारा लेते थे, लेकिन प्रत्येक राष्ट्रीय कार्यक्रमका अन्तिम लक्ष्य ध्वंशात्मक ही होता था। ब्रिटिश-शासनकी समाप्ति हमारे राष्ट्रीय-जीवनकी सफलताकी विशेष कसौटी थी। उस परखमें हम चोखे उतरे। विश्वपूज्य महात्मा गांधीके नेतृत्वमें हमारी राष्ट्रीयता सफलताकी सीढ़ियोंको पार करती हुई, स्वतन्त्रताके गौरवपूर्ण महलमें प्रवेश कर सकी।

लेकिन गत चौथाई सदीसे जो सुनहला-स्वप्न हम देख रहे थे, उसका वास्तविक रूप आज भी हमारी आँखोंसे ओझल है। हमारी आँखें आज राम-राज्यके भावुकतापूर्ण चित्रकी खोजमें हैं। अवश्य, आज हम अपना भावी कार्यक्रम निर्धारित करनेके लिये स्वतन्त्र हैं, लेकिन यह अधिकार हमें अपने कष्टोंके लिये भी प्रत्यक्ष रूपसे उत्तरदायी बना देता है। पाँच साल पहले हम अपने दुःखोंका उत्तरदायित्व किसी-न-किसी रूपमें अंग्रेजोंके सिर मढ़कर मानसिक सन्तोष प्राप्त कर लेते थे, लेकिन स्वतन्त्रताने हमारे उत्तरदायित्वका दायरा अत्यन्त विस्तृत कर दिया है। इस कारण हमारी राष्ट्रीय समस्या आज उलझनपूर्ण रूपमें दिखलायी दे रही है।

स्वतन्त्रता प्राप्तिकी समस्या हल होते ही नवीन समस्याओं—राष्ट्रीय समस्याओं—की कतार हमारे सामने खड़ी हो गयी। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद हम वर्तमान समस्याओंके साथ भीषण युद्ध कर रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्तिके युद्धसे यह युद्ध कहीं अधिक भीषण है। उस युद्धमें हमें दूसरोंको मार भगाना था, लेकिन इस युद्धमें हमें अपनी बुराइयों तथा कमजोरियोंको पराजित करना है। क्या यह युद्धकी स्थिति नहीं कही जा सकती? और यदि कही जा सकती है, तो क्या आज हमारा प्रयत्न युद्धमें विजय प्राप्त करनेके प्रयत्नके समान हो रहा है?

इस गम्भीर प्रश्नके उचित उत्तरमें ही हमारी मुक्तिका तत्त्व

छिपी है। हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि जनता और सरकारके बीच दिनों-दिन मतभेदकी खाई बढ़ती जा रही है। पंचवर्षीय योजनाको जनताका जो उदारपूर्ण सहयोग मिलना चाहिये था, वह नहीं मिल रहा है। पारस्परिक सहयोगके अभावमें दिनों-दिन अविश्वासकी मात्रामें वृद्धि हो रही है। फिर ठोस उन्नति किस प्रकार हो सकती है ?

इस भाग्यहीन परिस्थितिके लिये हम किसे दोषी ठहरायें ? मत-भिन्नताको मानव-प्रकृतिसे पृथक नहीं किया जा सकता। यह मानव-जीवनका प्रमुख अंग है, लेकिन विशेष परिस्थितियोंमें मनुष्य सदा मत-भिन्नताको पीछे छोड़ सम्मिलित शक्तिसे समस्याओंसे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ता आया है। गत द्वितीय महायुद्धके अवसर पर जनतन्त्रके आदि गुरु ब्रिटेनने सर्वदलीय सरकारकी योजना की। सारा देश आपसी भेद-भावको भूलकर राष्ट्रीयताके झण्डेके नीचे आ गया। सम्मिलित प्रयत्नने युद्धकी प्रतिकूलताओंको अनुकूलताका रूप दे दिया। फिर, युद्ध समाप्तिके बाद सभी राजनीतिक दल अलग हो गये। विश्व-युद्धके विजेता मि० चर्चिल, १०, डाउनिंग स्ट्रीटसे हटा दिये गये। इस राष्ट्रीय कार्यक्रममें भावुकताको कोई स्थान नहीं दिया गया।

क्या एक निश्चित कालके लिये हम इस प्रकार की कोई योजना नहीं बना सकते ? हमारी स्थिति भी तो आज युद्ध की है। सम्मिलित प्रयत्नसे देश की स्थिति सुधार हम अपना-अपना

अलग रास्ता पकड़ सकते हैं। देशके नेताओंको इस पहलू पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये।

इन दिनों अनेक राजनीतिक दल अपना-अपना राग अलग अलाप रहे हैं। लेकिन भाषणों और वक्तव्योंके द्वारा पारस्परिक विरोध प्रदर्शित करने के सिवा ये राजनीतिक दल कोई व्यावहारिक कार्य नहीं कर रहे हैं। क्या यह अच्छा नहीं होगा, यदि वाक्-युद्ध के बदले प्रत्येक दल एक-एक ग्राम-समूहको पृथक्-पृथक् अपना कार्यक्षेत्र बनाकर अपनी योजनाओं के अनुकूल उन्हें उन्नतिशील बनाये। इस तरह उनके कार्यक्रम की उपयोगिता तथा अनुपयोगिता स्पष्टतः देश के सामने आ जायगी। व्यावहारिक रूपमें जो दल अधिक उन्नतिशील होगा, स्वतः ही देश के नेतृत्वका अधिकार उसे प्राप्त हो जायगा। जनताके इस युगमें संसारकी कोई भी शक्ति उपयोगी कार्यक्रमको आगे बढ़नेसे नहीं रोक सकती। दूसरे की रेखा टेढ़ी प्रमाणित करनेके बदले अपनी रेखा सीधी प्रमाणित करनेका मार्ग कहीं अधिक व्यावहारिक तथा न्यायसंगत है। उपयोगिताके दृष्टिकोणसे अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करनेके लिये देशके राजनीतिक दलोंके बीच जो प्रतियोगिता होगी, उससे देशमें एक नवीन जागृति उत्पन्न हो जायगी।

गत पांच वर्षोंके नवीन अनुभवोंके आधारपर हमें शासन-प्रणालीमें भी कुछ परिवर्तन करना चाहिये। उदाहरण स्वरूप निर्वाचन प्रणालीको लिया जा सकता है। १९५२ ई० में इस देशमें संसारका सबसे बड़ा निर्वाचन बड़ी शान्तिके साथ सम्पन्न हुआ।

इस सफलताके कारण हमारी शक्ति की चारों ओर प्रशंसा हुई। लेकिन हमें इसे कुछ और भी सुन्दर बनाना होगा। इस समय अपने प्रतिनिधियोंसे हम किसी विशेष योग्यता की मांग नहीं करते। इसका फल यह होता है कि धारासभाओंके प्रतिनिधियोंके द्वारा मंत्रिमंडलोंका जो निर्माण होता है, उसमें विभिन्न विभागोंको सम्हालने की विशेष योग्यता रखनेवाले कम आदमी दिखलायी देते हैं। इसका फल यह होता है कि एक डाक्टरके हाथ वाणिज्य विभाग तथा एक व्यवसायीके हाथमें कानून विभागका कार्य आ जाता है। फलस्वरूप प्रत्येक विभागको चलानेके लिये मंत्रियोंके अतिरिक्त बहुसंख्यक सेक्रेट्रियोंकी आवश्यकता पड़ती है। वस्तुतः कार्य संचालन तो सेक्रेट्रियोंके द्वारा ही होता है। कहीं-कहीं तो जानकारीके अभावमें आंख मूंद कर मंत्रियोंको सेक्रेट्रियोंके निर्णय को माननेके लिये बाध्य होना पड़ता है। इस कारण हमारी शासन-व्यवस्था अधिक खर्चीली तथा कमजोर होती जा रही है।

इस दोषको दूर करनेके लिये हमें भिन्न-भिन्न विभागोंके लिये पृथक्-पृथक् निर्वाचन क्षेत्र बनाने चाहियें। जैसे शिक्षकों, डाक्टरों तथा वकीलों आदिका निर्वाचन क्षेत्र। विभिन्न राज्यसे इन पृथक्-पृथक् निर्वाचन क्षेत्रोंके प्रतिनिधि पार्लियामेण्टमें लिये जांय। इन निर्वाचन क्षेत्रोंसे जितने व्यक्ति अपनी सेवा अर्पित करना चाहें, सरकार निष्पक्ष रूपसे उनकी योग्यताओंकी जानकारी मतदाताओंको करा दे। इस जानकारीके आधार पर मतदातागण स्वयं

अपने निर्णयके अनुसार वोट दें। किसी भी उम्मीदवारको व्यक्तिगत रूपसे किसी प्रकारका प्रचार करनेका अधिकार नहीं दिया जाय।

इस प्रकार जो व्यक्ति पार्लियामेण्टके सदस्य बनें, उनमेंसे योग्यतमको उसकी योग्यताके विभागका मन्त्रित्व दिया जाय। उदाहरण स्वरूप यदि पचास शिक्षक तथा पचास डाक्टर पार्लियामेण्टके सदस्य हुए, तो शिक्षा और स्वास्थ्य विभाग इनमेंसे ही दो योग्य व्यक्तियोंके हाथ सौंपा जाय। ऐसी दशामें ये विशेषज्ञ मंत्री अधिकारपूर्वक अपने-अपने विभागका काम कम खर्च तथा उचित व्यवस्थाके साथ चला सकेंगे। इस प्रकारके सुधारोंके द्वारा हम अपने राष्ट्रीय जीवनमें एक नवीन प्रवाह तथा विश्वास ला सकते हैं।

राष्ट्रीय समस्याओंके सिलसिलेमें हमारा ध्यान वैदेशिक संपर्ककी ओर भी स्वभावतः हो जाता है। संसारके प्रायः सभी प्रमुख देशोंमें भारतीय दूतावास स्थापित हो चुके हैं। साथ ही भिन्न-भिन्न देशोंके राजदूत हमारे देशमें भी वर्तमान हैं। इस प्रकार हमने समूचे संसारसे राजनीतिक तथा कूटनीतिक सम्पर्क स्थापित कर लिया है। इस सम्बन्धमें यह ध्यान देनेकी बात है कि विदेशोंमें हमारे प्रतिनिधिगण वास्तविक भारतीयताको ही प्रदर्शित करनेकी चेष्टा करें। यदि हम गरीब हैं, तो हमारे प्रतिनिधियोंको बाहरी आडम्बर दिखला कर इस गरीबीको छिपानेका प्रयत्न कदापि नहीं करना चाहिये। धनी देशोंके प्रतिनिधियोंके

साथ हमारे प्रतिनिधि क्यों वाहरी आडम्बरोंमें प्रतियोगिता करें ? आडम्बरके बदले अपनी आध्यात्मिकताकी जानकारी प्रदान कर हम दूसरोंका सम्मान अर्जित कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघमें भी हमारे प्रतिनिधियोंको अपने शान्तिमय विचारोंसे दूसरोंको प्रभावित करना चाहिये।

दूसरे देशोंकी विशेषताओंको सीखना तथा अपनी विशेषताओंसे उन्हें लाभान्वित करना हमारा लक्ष्य होना चाहिये। इस प्रकार विशेषताओंके आदान-प्रदानके द्वारा हम उपयोगी वैदेशिक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

संसारके भिन्न-भिन्न भागोंके निवासी व्यवसाय, अध्ययन तथा भ्रमणके लिये यहाँ आते हैं तथा इस देशके निवासी भी प्रायः इन्हीं कामोंके लिये विदेश जाते हैं। जो कोई भी भारतीय चाहे किसी भी कामके लिये विदेश जाय, उसे अपनेको भारतीयताका दूत समझना चाहिये और इस गम्भीर उत्तरदायित्वका निर्वाह उसे प्रवास-कालमें सदा करना चाहिये।

औद्योगिक क्षेत्रमें हमें अन्य देशोंसे बड़ी सहायता मिल सकती है। घोर प्रयत्नके बाद उन्होंने इस दिशामें मूल्यवान अनुभव प्राप्त किया है। विदेशियोंको सुविधा प्रदान कर हम उनके औद्योगिक अनुभवसे लाभ उठा सकते हैं। उनके सहयोगसे हम बड़े-बड़े उद्योग सरलतासे आरम्भ कर सकेंगे। इस प्रकार

विदेशोंके प्रति सहयोगपूर्ण भावनाकी सृष्टि कर हम राष्ट्रीय समस्याओंको सुलझानेमें सफल हो सकते हैं।

विभिन्न प्रान्तीय भाषाओंको लेकर हमारी राष्ट्रीय एकतामें बाधा पड़ रही है। भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी क्षेत्र अपने लिये पृथक् राज्यके निर्माणकी मांग कर रहे हैं। इस प्रकारकी आंचलिक भक्तिके कारण भारतव्यापी एकतामें कठिनाई आनेकी स्पष्ट सम्भावना दिखलायी दे रही है। हमारे जानते इस कठिनाईको दूर करनेका एक सरल उपाय यह है कि भिन्न-भिन्न अंचलोंकी भाषाओंको आंचलिक मान्यता प्रदान की जाय। लेकिन भारतकी प्रत्येक भाषा एक ही लिपि—देवनागरीमें लिखी जानी चाहिये। लिपिकी यह एकता धीरे-धीरे हमारी भिन्नता दूर कर देगी और कुछ दिनोंके बाद भाषा सम्बन्धी कोई कठिनाई दिखलायी न देगी। एक लिपि हो जाने पर हमारे बच्चे भिन्न-भिन्न भाषायें सरलतासे सीख सकेंगे। इस समय यदि उन्हें दो भाषायें सीखनी होती हैं, तो दो लिपियोंका ज्ञान प्राप्त करना होता है। लेकिन एक लिपि हो जाने पर सुविधापूर्वक कई भाषायें सीखी जा सकती हैं।

इस देशकी दर्जनों भाषायें तीन प्रमुख भाषाओंसे निकली हैं। संस्कृत, द्राविड़ भाषा तथा अरबी। यों तो बोलचालकी बहुसंख्यक भाषायें हैं। केवल उत्तर भारतमें ही इस सम्बन्धमें मैथिली, भोजपुरी, मागधी, अवधि, बुँदेलखण्डी, ब्रजभाषा तथा राजस्थानी आदिका नाम लिया जा सकता है। लेकिन इस प्रमुख

भाषायें इस देशमें है जिन्हें साहित्यकी दृष्टिसे सम्मानपूर्ण स्थान मिल चुका है। इनमें हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती तथा गुरुमुखीकी जननी संस्कृत है। तामिल, तैलगू, कनाड़ी तथा मलायम द्राविड़ भाषाकी सन्तान है। उर्दूकी उत्पत्ति कई भारतीय भाषाओंके मिश्रणसे हुई है। लेकिन उसकी लिपि अरबी है। इस कारण अरबी ही उसकी जननी समझी जायगी।

यदि उपरोक्त सभी भाषायें देवनागरी लिपिमें लिखी जांय, तो वस्तुतः एक बड़ी राष्ट्रीय समस्या स्वतः हल हो जायगी। देवनागरी लिपिका निर्माण पूर्ण वैज्ञानिक ढंगसे हुआ है। संसारमें सम्भवतः देवनागरी ही एक ऐसी लिपि है, जिसमें अक्षरोंके संयोग और उच्चारणमें कोई भेद नहीं होता। इसमें जैसा लिखा जाता है, वैसा ही उच्चारित होता है। उच्चारणके समय किसी भी अक्षरको अनुच्चारित नहीं छोड़ा जाता। इस विशेषताके कारण देवनागरी लिपिमें कोई भी भाषा अपने स्वाभाविक सौंदर्य्यको नष्ट किये विना लिखी जा सकती है।

लोगोंकी विचारधारा भाषाके द्वारा बहुत अधिक प्रभावित होती है। अतएव भाषाके क्षेत्रमें एकता प्राप्त किये विना विचारधारामें एकता सम्भव नहीं। हमें दूरदर्शिता पूर्वक भाषा सम्बन्धी गम्भीर भिन्नताको दूर करना होगा।

प्रत्येक क्षेत्रके निवासीको अनुभव करना चाहिये कि वे भारतमाताकी सन्तान हैं। देशके सामूहिक स्वार्थके सामने किसी

भी आंचलिक स्वार्थको महत्त्व देनेकी भावना जिस दिन हम निकाल सकेंगे, उसी दिन हमारा राष्ट्रीय जीवन सबल और स्वस्थ हो जायगा। भावनाकी भिन्नताको दूर कर हम राष्ट्रीय एकताका मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। प्रत्येक देशभक्त भारतीय सदा इस एकताका मधुर स्वप्न देखता है। हमें किसी न किसी रूपमें इस स्वप्नको सार्थक कर सम्मिलित शक्तिसे प्रगतिकी ओर आगे बढ़ना होगा।